* श्री *

श्री श्री रामकृष्ण परमहंसदेव

का

जीवन चरित तथा उपदेश

* श्री *

श्री श्री रामकृष्ण परमहंसदेव

का

संक्षिप्त जीवन चरित और उपदेश

जिसको

बंगभाषा की पुस्तकों से रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद की
महानुभूति से स्वामी विज्ञानानन्द जी द्वारा प्रकाशित
संग्रह और अनुवाद को संशोधित कर
श्री श्री रामकृष्ण शताब्दि सभा
इलाहाबाद (शाखा) ने
धर्मार्थ वितरण के लिये
प्रकाशित कराया

मुद्रक—काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से
ओंकार प्रेस, प्रयाग में छपा।

१९३६ ई०

तृतीय आवृत्ति] [मूल्य दस आना

* श्री *

"तव कथामृतं तप्तजीवनं

कविभिरीडितं कल्मषापहं।

श्रवणमंगलं श्रीमदाततं

भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥"

[श्री मद्भागवत गोपी गीता]

सामाजिक बल उस श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर है जो प्रायः किसी समाज के विचारों में पाया जाता हो। उस समाज का प्रत्येक मनुष्य उसी विश्वास के सहारे अपना जीवन बिता कर अन्त में उसी विचार में प्राण त्याग करता है। इसी प्रकार मनुष्य तो मरते चले जाते हैं लेकिन उनके विचारों के कुछ अंश बाकी रह जाते हैं। इसीलिये वह समाज बना रहता है। हिन्दू-समाज का बल इसी प्रकार हमारे मत सम्बन्धी श्रद्धा, भक्ति और विश्वास पर निर्भर है। हिन्दू अपना नाम, प्रतिष्ठा, कीर्ति, बल तथा विभूति आदि संसार के सभी सुख अपने धर्म के सामने त्याग देता है और अनित्य पदार्थ को छोड़ नित्य पदार्थ की ओर अधिक ध्यान देता है। हिन्दू का पहला प्रश्न प्रायः यही होता है कि भौतिक पदार्थ श्रेष्ठ है या आध्यात्मिक? उसका निस्सन्देह उत्तर भी यही होता है कि आत्मा ही श्रेष्ठ है। हिन्दुओं का विश्वास भौतिक तत्त्वों पर

नहीं वरन् आत्मीय पदार्थ पर ही होता है और वह आत्मा को ही प्राण और सांसारिक ज्योति समझता है और अपने निश्चय को इस प्रकार दिखलाता है—

मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दुधारणात् ।
तस्मादतिप्रयत्नेन, कुरुते विन्दुधारणम् ॥
[शिव संहिता]

अर्थात् विन्दु का पात ही मृत्यु और विन्दु का धारण ही जीवन है, इसीलिये विन्दु का धारण बड़े यत्न से करना चाहिये।

हिन्दू भूतात्मवाद को (Materiality) ही मौत के समान समझता है और यह उसका केवल विचार ही नहीं है वरन् वह इस चिन्तन में अपना जीवन ही बिता देता है। भारतवर्ष को छोड़ संसार के और किसी देश में इस विचार का साधन नहीं और न पूर्ण रूप से उसका पालन ही होता है। हिन्दुस्तान में यही विचार जीवन का मूल-मंत्र गिना जाता है। यहां की प्रजा का यही जीवन-मूल है। इसके खिलाफ दूसरा कोई विचार इसकी गति के रोकने में आज तक समर्थ हुआ नहीं। खिलाफ़ विचार रखने वाला पुरुष राक्षसों के राजा रावण के समान हैं जो एक दिन शाम को अपने लड़के इन्द्रजीत से यह सुन कर कि रामचन्द्रजी महाराज की सेना ही नहीं किन्तु रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी भी नागफांस में बँध गये हैं। अपनी विजय का विचार कर रहा था कि सवेरा होते ही उसके कान में।'जयराम' 'जयराम' की भनक पड़ी। उसको सुनते ही वह बोल उठा—"रामचन्द्रजी की बानर सेना निश्चय अमर

है और रामचन्द्रजी मनुष्य नहीं निस्संदेह विष्णु का ही अवतार हैं।"
कभी कभी भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर भी अनात्मवाद अर्थात्
भूतात्मवाद (Materialism) का परदा ऐसा गिरता हुआ जान
पड़ता है कि मानों वह आत्मवाद (Spiritualism) को छिपाही
देगा, लेकिन थोड़े ही दिन पीछे देश के किसी कोने से किसी
महात्मा के बड़ी ही मधुरध्वनि से अपना गीत आरम्भ करते ही
अन्धकार दूर होकर प्रकाश हो जाता है।

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

[श्री मद्भगवद्गीता]

बंगाल के एक छोटे से अप्रसिद्ध गाँव में एक बच्चा पैदा हुआ
जो अपनी बुढ़ाई तक भी पढ़ना लिखना नहीं जानता था, परन्तु
आज उसका नाम हमारे भूमंडल के आधे निवासी जहां भी आध्यात्म-
वाद प्रचलित है गाते हैं। उसी का जीवन चरित्र प्रोफेसर मेक्स-
मुलर ने लिखा है और अपने लेख में उनको उन्नीसवीं शताब्दी का
'सच्चा महात्मा' कह कर उसकी प्रशंसा की है। ऐसे समय में
जब कलियुग के घोर प्रभाव के कारण हर चीज का रूप कुछ उल्टा
दिखाई देता है। श्री रामकृष्ण ने बच्चे के रूप में साधारण, मधुर और
मेघध्वनि में संसार को यह संदेश सुनाया कि परमेश्वर पर किसी

एक सम्प्रदाय का ही अधिकार नहीं बल्कि सब सम्प्रदायों का समान आधार है। हिन्दू, बौद्ध, ईसाई और मुसलमान सब सम्प्रदाय के लोग एक ही दिव्य जननी के पुत्र हैं। वही सब को काम करने की ताक़त देती है और जितने मत तथा सम्प्रदाय हैं वे सब परमेश्वर तक पहुँचने के ही रास्ते हैं। अध्यात्मिक उन्नति और लक्ष्मी का चमत्कार सम्प्रदायों के नाश से नहीं होता, वरन् उनमें समभाव उत्पन्न करने से होता है। आत्मिक उन्नति बहस मुबाहिसे से नहीं होती, परमेश्वर पर पक्का विश्वास लाने से होती है। जहां तर्क-वितर्क का खातमा होता है वहीं से धर्म की शुरूआत होती है। खुदग़रजी के बर्ताव में धर्म नहीं। उस परमात्मा को अपना अत्यन्त प्रिय समझ कर उसके पास पहुँचने के मतलब से उत्साह सहित बालक के समान सच्चे और सरल भाव से कोशिश करने में ही धर्म है। रामकृष्ण ने इस प्रकार का संदेश ही नहीं दिया वरन् अपने जीवन में इसकी सत्यता को अमल में लाकर दिखा भी दिया, बस और कुछ नहीं, यही हिन्दू धर्म का प्रचार है। चाहे जिस तरह के विचार और बुद्धि से मनुष्य इस बात की जांच करे, अन्त में उसके हृदय में सन्तोष हो जायगा कि श्रीरामकृष्ण की बाणी साधारण और सब की समझ में आने लायक है। उनके शुद्ध हृदय में विश्व प्रेम भरा हुआ है। उन्होंने वह नई रोशनी संसार में फैलायी है जो आगामी कई सदी तक कायम रहेगी। इस बालक का नाम मनुष्य मात्र के मुख से सुना जायगा। इस बालक का बल दैवी है इसलिये उसको कोई हरा नहीं सकता। इसी बालक ने उस

आदि शक्ति को जगाया है जो सब मतान्तरों की बुनियाद है। उसने किसी मत पर दोषारोपण नहीं किया। जितना वह मत मतान्तरों का आदर सत्कार करता था उतना आज तक किसी ने नहीं किया। उसके प्रत्येक शब्द से दिव्य, सरलता, मधुरता, सत्यता और निर्भीकता प्रकट होती है, वही सब का संतोष और शांति-दाता है। इस जीवन चरित्र में यदि कोई ऐसी बात लिखी गई हो जो मधुर न हो व सत्य न हो अथवा दिव्य न हो, तो उसके जीवन का दोष नहीं है—परन्तु यह उसके लेखक का दोष है जिसके साथ अनेक दुनियावी झंझटें लगी हुई हैं। उनका मत सम्बन्धी अभ्यास, आचार और तपस्या आश्चर्य में डालने वाली और बेमिसाल हैं। उसने कलकत्ते के पास दक्षिणेश्वर में जहाँ आध्यात्मवाद की विशेष चर्चा है। पंचवटी के पास एक पीपल के वृक्ष के नीचे बारह वर्ष तक कठिन तपस्या की, जिसको युवा और वृद्ध, स्त्री और पुरुष, संत और संसारी सब ने देखा। जब वह जवान था तो सवेरे ही सूरज की ओर टकटकी लगाये हुये यह कहता सुना गया कि 'हे माता' 'हे माता' और इसी प्रकार अपने निरन्तर खुली आंखें सूरज की ओर लगाये हुए उसका सिर आकाश में सूरज की गति के संग घूमता हुआ देखा गया। यहां तक कि सन्ध्या को सूरज जब छिप जाता था तो वह यह कहते सुनाई पड़ता था कि 'हे माता!' 'हे माता!' सूर्य उदय होकर अस्त हो गये, परन्तु मैं आपके दर्शन न कर सका। यह कहते ही कहते उनको मूर्छा आगई और उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। ऐसी दशा में फिर किसको संदेह रह सकता

है कि ऐसे बालक की आत्मा अलौकिक नहीं है ? इसी प्रकार तीन दिन तक जब ऐसा ही करता रहा, तब उसको दिव्य माता का सूर्य में दर्शन हुआ। इसके बाद वह थोड़ी देर तक चुप व अचेतन से हो गये और तब थोड़ी उम्र के बच्चे की तरह कहने लगे कि "हे माता ! तेरे ऐसे अपूर्व और मनोहर रूप का दर्शन पाकर किसकी आत्मा को हर्ष और गौरव प्राप्त न होगा।" इसके बाद कुछ दिन के लिये उनकी आँखों के पलक निमेषोन्मेष रहित अचल हो गये। उनके नेत्रों को खुले देख बालक अपनी उंगली उनकी आंखों की ओर इसलिये करते थे कि पलक चलने लगें, परन्तु जब वह कामयाब न हुये तो किसको आश्चर्य न हुआ ? वह १२ वर्ष तक बराबर दिन रात जागते हुये देखे गये, हर मनुष्य इस बात को असम्भव कहेगा परन्तु नहीं। श्रीमान् रामकृष्ण परमहंस ने सचमुच ऐसा ही किया था।

वह धातु, धन अथवा स्त्री को नहीं छूते थे। कोई आता तो उसको देखते ही पहिले अपना सिर झुका देते थे। मरने के समय एक भी संसारी चीज ऐसी नहीं छोड़ी जिस पर उनका अधिकार कहा जाय। अपने जीवन में वह बड़े आदमी भी नहीं गिने जाते थे, सिवाय इसके कि उन्होंने काम, क्रोध, लोभ तथा अहंकार पर पूर्ण विजय पाई थी और अत्यन्त नम्र थे। कभी कभी मूर्छित हो जाते, कभी मुर्दा के समान हो जाते और फिर जीवित हो जाते थे। जब कभी 'श्री हरि' और 'आनन्द मयी माता' का नाम लिया जाता था तो फौरन् उनकी आंखों से भक्ति के आंसुओं की धारा बह चलती थी।

उपर्युक्त बातों की वजह यह थी कि वह अपनी शक्ति को दिखाना नहीं चाहते थे। उनका कथन यह था कि शक्तियों का अनुसंधान ही परमेश्वर के मार्ग में रुकावट है। एक दिन धूप में चलते चलते जब उन्होंने देखा कि उनके शरीर की परछाईं नहीं पड़ती, तो उन्होंने बहुत ही डर कर श्री माताजी से बड़े विनय से प्रार्थना की कि हे माता! मेरे शरीर की छाया पड़ा करै। यद्यपि वह अपनी शक्ति नहीं दिखाना चाहते थे तथापि उनके साथी और स्नेही इस बात के जानने की बड़ी ही फ़िक्र करते थे कि श्री रामकृष्ण को काम और लोभ से वैराग हुआ या नहीं। वह कलकत्ते में वेश्या और गणिकाओं के घर अपने संग उनको ले जाते थे, जहां बीसियों तरुण स्त्री सुन्दर कपड़ा पहने योगी को भ्रष्ट करने के लिये इकट्ठी हो जाती थीं। श्री रामकृष्ण जब उनमें घिर जाते थे तो सिर्फ माता का नाम पुकारते थे और उस समय उनके शरीर से दिव्य तेज प्रगट होता था। वह आप मूर्च्छित हो जाते थे और उसी तेज के प्रताप से वे स्त्रियां इतनी दूर हो जाती थीं कि उनके पास नहीं आ सकती थीं। जब स्त्रियां यह चरित्र देखतीं तो कहने लगतीं कि हमने पहले ऐसा मनुष्य नहीं देखा, जो लोग उनको वहां ले जाते थे उन्हें भी भला बुरा कहती थीं।

श्री केशवचन्द्र सेन और दूसरे महाशय इस बात का समर्थन करते हैं कि श्री रामकृष्ण रुपये पैसे नहीं लेते थे और न छूते थे। एक समय यह देखा गया कि उनका मुख काला है और कपड़ा पूंछ की भांति ऐंठा हुआ उनकी कमर से बँधा हुआ है और वह एक

पीपल के वृक्ष की शाखा से लटके हुए हैं। जब उनसे इसकी वजह पूछी गयी तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह रामचन्द्रजी के प्रसिद्ध भक्त हनुमान हो गये हैं। इस बात को सुनकर लोगों को आश्चर्य हुआ। जब वह उस वृक्ष से उतरे और लोगों ने देखा कि उनकी गुदा के पास एक इञ्च हड्डी पूंछ के स्थान पर निकल आई है तो लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

जब वह अपनी माता के विषय में बातचीत करते थे, उस समय बाबू केशवचन्द्रसेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, प्रतापचन्द्र मजुमदार, शशिधर तर्क चूड़ामणि, बङ्किमचन्द्र, कृष्णदास पाल आदि विद्वानों की मंडली को उनके आगे बैठे हुए और एकाग्र चित्त होकर सुनते हुए देख ऐसा कौन होगा जो आश्चर्य न मानेगा? बाबू केशवचन्द्र कभी उनसे तर्क वितर्क नहीं करते थे, वे हमेशा घुटना मोड़ कर और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठे रहते थे। हमने पुस्तकों में श्री चैतन्य के चरित्र और उनके महान विचार तथा सन्तों के विषय में अनेक बातें सुनी हैं। हमारा विचार है कि मन के विकार रोके और जीते जा सकते हैं। हम यह भी जानते हैं कि सत्य को ही पकड़ कर रहना चाहिये। हमने गीता में आत्म सम्बन्धी ऊँची शिक्षा पढ़ी है और हम बड़े बड़े महात्मा तथा सन्तों के जीवन चरित्र सुनते हैं, परन्तु इस समय जब भूतात्मवाद की अधिक चर्चा है, हम श्री रामकृष्ण में इन सब बातों का रूप एकत्रित देखते हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य को संतोष और शान्ति प्राप्त होती है और ऐसे मनुष्य का भी दुख दूर हो जाता है जिसका इकलौता पुत्र मर गया

हो। वे धन्य हैं जिन्होंने उनके साक्षात् दर्शन किये और जो उनके कृपा-पात्र हुये। वह भूमि भी धन्य है जहां उन्होंने जन्म धारण किया और वह युग भी धन्य है जिसने उनको देखा।

वे अत्यन्त उद्योगी थे, कभी कभी परम आनंद में डूब जाते थे, कभी ध्यान में डूब जाते थे और कभी कभी अपने शरीर तथा पास की चीजों को बिल्कुल भूल जाते थे। वे कभी सिर से दुपट्टा बांध कर घूमते थे, कभी उन लोगों से बार्तालाप करते थे जो उनके पास आते थे और कभी बालकों की तरह घूमते और खेलते थे। यह सब बातें उनमें ऐसी मिलती थीं कि मानों स्वाभाविक हैं, परन्तु कोई मनुष्य जब तक उनके पास रहता था उनके हृदय की अद्‌भुत और विलक्षण गति को नहीं जान सकता था। हां, उनसे अलग होते ही संसार का भार ऊपर दीखता था और उससे बचने का उद्योग असम्भव सा ज्ञात होता था। ऐसी दशा में यदि हम उनकी शिक्षा का कोई अंश अपने जीवन में धारण करें तो हमको शांति प्राप्त हो जाय और निश्चय स्वर्गीय आनन्द मिले।

उनका रूप विश्व-बुद्धिमय, विश्व-भक्तिमय और विश्व-प्रेममय था, अर्थात् वह इन सबके अवतार थे। उन्होंने हमको हमारा सच्चा गौरव दिखलाने के लिये जन्म लिया था और उन्होंने यह बतला दिया कि भारत भूमि ही पारमार्थिक है और संसार में भारतवर्ष ही आत्म-तत्व का केन्द्र तथा असली स्थान है। भूत-तत्व में कभी ऐसी शक्ति नहीं हुई जो आत्मतत्व को जीत सके, वरन् भूततत्व आत्मतत्व से मिलते ही अपना रूप छोड़ आत्मा में मिल

जाता है। उन्होंने यह दिखलाया कि मनुष्य केवल भूतात्मवाद के सहारे ही नहीं जी सकता और न उसको शांति या संतोष मिल सकता है। मनुष्यों को शांति-सुख देने के लिये उन्होंने अवतार लिया था। भूतात्मवाद को उन्होंने अलग नहीं किया, वरन् उसको अपनी सर्वगत गोद में लेकर पवित्र और ईश्वरभक्त बना दिया, अर्थात् भूत को आत्मा का साधक सिद्ध कर दिखलाया। उन्होंने अवतार लेकर हमको यह भी सिखलाया कि हम अपने ही पैरों सत्य, विद्या और भक्ति पर कैसे खड़े हो सकते हैं। सिवाय इस आधार के, संसार के और सब पदार्थ थोड़े ही समय में फ़नां (नष्ट) होने वाले हैं, परन्तु परमेश्वर की भक्ति जो सनातन हिन्दू धर्म है सदा अमर रहैगी।

उन्होंने संसार में शरीर धारण करके यह भी उपदेश दिया कि हमको बालक की तरह छोटी छोटी बातों पर झगड़ा नहीं करना चाहिये। जब बहुत से लोगों ने मूर्त्ति-पूजा छोड़ना आरम्भ किया, तो उन्होंने बाबू केशवचन्द्र से दृढ़ता पूर्वक यह कहा कि मूर्त्ति पूजा असत्य नहीं वरन् सर्वदा सत्य है। जब संसार के सब लोग अपने ही मत को सत्य बतलाने में लगे हैं तब ऐसे युग में उनका यह कथन कि संसार में जितने मत हैं वे सब उस दिव्य माता के पास जाने के मार्ग हैं। हमारे सामने सदा आदर्श बनकर रहेगा।

हिन्दू समाज को उन्होंने यह शिक्षा दी कि आर्य ऋषि महात्मा जो धर्म का मार्ग बतला गये हैं वही सबसे अच्छा है। आर्य ऋषि, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण और तंत्रों ने जो नियम और मर्यादा

कायम की है उसको वे आप भी पक्के तौर से मानते और उसका आदर करते थे। वह वैष्णव, शैव, शाक्त और अन्य उन सब मतों को जो भारतवर्ष में प्रचलित हैं, एक ही अद्भुत रूप को ज़ाहिर करने वाला बतलाते थे। वह वर्ण और जाति विभाग के नियम को मानते थे और जो आहार ब्राह्मण देवी पर चढ़ाते थे उसको खा लेते थे। वह अत्याचार को अच्छा नहीं समझते थे और अत्याचार की आड़ में जो दम्भ और कपट होता है उसे दूर करने के लिये सदा तैयार रहते थे। वे आश्रम-प्रणाली को मानते थे। साधु-सन्तों का सम्मान करते और देवी, देव तथा श्री गंगाजी का आदर सत्कार करते थे। जब कभी वे दूर से भी श्रीराम, कृष्ण, हरि, काली या शिव का मनोहर नाम सुनते तो वे आनन्द और समाधि में डूब जाते थे। उनकी करुणा और दया सब पर रहती थी। वे सब पदार्थों को चेतन-मय जानते थे। जब कभी वे किसी मनुष्य को हरी घास के खेत में घूमते देखते थे तो घास को पिचते देख उनको बड़ा खेद होता था।

वे उन विचारों का प्रकाश बड़ी ही उत्तमता से करते थे, जो नित्य सत्य हैं और सांसारिक मनुष्यों का जीवन-मूल तथा ज्योति-रूप हैं, जिनके बिना कोई जीव संसार में एक क्षण भी दम नहीं मार सकता। नहीं, उन्होंने इन विचारों को ही नहीं ज़ाहिर किया, वरन् ब्रह्माड के अन्य लोक-वासियों के नियम भी बड़ी उत्तमता से प्रगट किये। संसार में जो कुछ तत्व और सार होना सम्भव है, उन सब को उन्होंने उत्तेजित और प्रगट किया।

निस्सन्देह उनके जीवन में ऐसे आश्चर्य जनक भाव मिले हुए देखे गये जिनके कारण उनका जीवन चरित लिखना कठिन है।

उनके समान कोई त्यागी नहीं हो सकता। वे सन्यासियों के महाराज थे, उनके हृदय में सब दिव्य शक्ति मौजूद थी, परन्तु वे उन्हें ज़हिर नहीं करते थे, बल्कि यह कहा करते थे कि शक्तियों की खोज से परमेश्वर की प्राप्ति में बाधा पड़ती है। परमात्मा ने मनुष्यों के कल्याण के लिये उनमें वे शक्तियाँ दिखलाईं जो इस युग के लिये आवश्यक हैं, जिनको हम ग्रहण कर सकते हैं वे क्रमशः मनुष्यों के सामने प्रकट भी हो जांयगी।

अन्त में हम पंडित सरजूप्रसाद मिश्र, पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य, महामहोपाध्याय प्रयाग निवासी और बाबू मुन्नीलाल वकील अलीगढ़ निवासी को विशेष धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस परोपकारक ग्रन्थ के अनुवाद, संशोधन और प्रूफ के देखने में क्लेश उठाकर सहायता की है।

—विज्ञानानंद,

बेलुड़ मठ,

सन् १९०४ ई०

[इस वर्तमान संस्करण के तैयार करने में पं० राजनाथ पाण्डेय एम्० ए० ने जो कुछ मनोयोग दिया है उस के लिये उनके नाम का उल्लेख करना जरूरी है।]

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

* श्रीगणेशाय नमः *

परमहंसचरित

अर्थात्

श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंस का जीवन चरित।

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोऽपि भिन्ना
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(महाभारत)

पवित्र जन्मभूमि कामारपुकुर

ज़िला हुगली, मुहक़मे जहानाबाद से चार कोस पश्चिम की ओर कामारपुकुर नामक एक गांव बसा है। वहां श्री १०८ रामकृष्ण जी का जन्म हुआ। यह बर्दवान से १६ कोस दक्षिण, तारकेश्वर से १२ कोस पश्चिम, घाँटाल से ८ कोस उत्तर दिशा में है।

रामकृष्ण जो के माता-पिता

महात्मा रामकृष्णके पिता का नाम खुदिराम चट्टोपाध्याय था। गांव के लोगों में खुदिराम प्रसिद्ध गरीब, निष्ठावान् और तेजस्वी ब्राह्मण गिने जाते थे। उनमें उनका आदर भी था। लोग कहते हैं जब तक वे तालाब में स्नान करते थे, तब तक उसमें कोई उतरता न था। यह भी सुना जाता है कि उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी गरीब रहकर भी शूद्र से कभी दान नहीं लिया था। श्रीरामकृष्ण की माता की प्रकृति परम सौम्य थी। उनकी दया सब पर रहती थी। किसी को भूखा देखतीं तो उसे खाने को कुछ दिये बिना नहा रहती थीं। बुढ़ाई में वे गङ्गा के तट रहने के अभिप्राय से अपने पुत्र रामकृष्ण के समीप रानी रासमणि की स्थापित की हुई दक्षिणेश्वरवाली काली-बाड़ी में आकर रहने लगीं। रामकृष्ण के मुख्य भक्त रानी रासमणि के दामाद मथुरा बाबू की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि रामकृष्ण के परिवार के प्रत्येक आदमी के लिये अलग अलग कुछ पूंजी दान दे दें। अतः रामकृष्ण से जब उन्होंने अपनी वह इच्छा प्रगट की तब रामकृष्ण ने मथुरा बाबू को इस तरह के दान की सलाह न दी। केवल इतना ही नहीं, वरन उन्हें इससे बरबस रोक भी दिया। इसके बाद रामकृष्ण की माता जब दक्षिणेश्वर में आकर बसीं तो मथुरा बाबू की वही दान की इच्छा फिर हुई। उन्होंने एक दिन रामकृष्ण की माता से कहा—"माता! मैं आपको कुछ दान देना चाहता हूँ।" यह बात सुन कर श्रीरामकृष्ण की माता बोलीं—"बाबू!

मैं यहाँ बड़े सुख से हूँ। मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। मैं यहां रोज़ गङ्गा स्नान करती हूँ और भगवती का प्रसाद पाती हूँ। अब किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।" मथुरा बाबू यह बात सुनकर भी बार बार दान ग्रहण करने की बिनती करने लगे। रामकृष्ण की माता उनकी बार बार की बिनती पर नहीं न कर सकने के कारण अन्त में बोलीं—"तुम हमें दो पैसे की सुर्ती-तम्बाकू मोल ले दो।" मथुरा बाबू यह बात सुन कर भौंचके से हो गये और बोले—"अहो! यदि आप ऐसी न होतीं तो श्रीराम कृष्ण सा बेटा आपकी कोख में जन्म कैसे लेता?"

श्रीरामकृष्ण का जन्म

श्रीरामकृष्ण के पिता जब गया धाम में ठहरे हुये थे, रात में उन्होंने स्वप्न देखा कि गया के स्वामी श्रीश्रीगदाधरजी दर्शन देकर कहते हैं—"मैं तुम्हारा पुत्र हो कर जन्म लूंगा।" यह स्वप्न की बात सत्य है व गढ़ी हुई है इस सूक्ष्म भेद की सचाई परखने की बुद्धि अब तक जिनमें नहीं पैदा हुई है, वे तर्क-वितर्क करके खोद-विनोद या उधेड़ बुन किया करें; परन्तु रामकृष्ण के भक्त ऐसी शिक्षा और विज्ञान-विस्तार के दिनों में भी अब प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं और जिनके ऊपर रामकृष्णजी की कृपा होगी, वे आगे अनुभव करेंगे कि *शकाब्द १७५६ सौर दशमी फाल्गुन शुक्ल द्वितीया बुधवार को

---

* बङ्गाली सन् १२४१ (सन् १८३४ ईसवी २० फरवरी)

कामारपुकुर गाँव में खुदिराम चट्टोपाध्याय के घर जो लड़का पैदा हुआ था वह मनुष्य नहीं देवता था, उस समय भगवान् गदाधर की कृपा से खुदिरामजी ने इस गूढ़ रहस्य का भेद जान लिया था। अतः उन्होंने उस अनुपम पुत्र का नाम 'गदाधर' रक्खा। गांव के लोग उसी गदाधर को बचपन में गदाई गदाई कह कर पुकारते थे।

रामकृष्ण की बाल्यावस्था

गदाई का रूप न जाने किस सामग्री का बना था कि लोग उन्हें देखते ही मोहित हो जाते थे। जो कोई भी उन्हें देखता था आदर से गोद में ले लेता था और जो उन्हें गोद में लेता था उसके पास गदाई भी प्रेम से जाते थे। केवल गदाई के दर्शन के ही लिये दिन में कितनी बार गांव की स्त्रियां घर के काम को छोड़ कर उनके घर आती थीं।

पांच वर्ष के गदाई गांव भर के सब लोगों के घर जाते थे, सब लोग उन्हें पहचानते थे और वह भी सब को जानते थे। गदाई के देखने ही के मतलब से ज़मींदार उनके पिता से कहा करते थे कि एक दिन आप गदाई को साथ ले कर आइये।

धीरे धीरे अवस्था जैसी जैसी बढ़ती थी वैसे वैसे गदाई की अद्भुत

बुद्धिशक्ति और अनुपम समर्थता को देख देख कर लोग ताज्जुब करते थे। गाँव की स्त्रियाँ पुत्रवती होकर भी गदाई के देखे बिना चैन न पाती थीं। कोई किसी दिन गदाई को न देखती तो एक दूसरी से पूछती "कल गदाई नहीं दिखाई पड़ा। क्या कारण है ?" अच्छी बुरी चाहे जैसी चीज़ हो स्त्रियाँ अपने बच्चों को देतीं तो गदाई के लिये भी उसमें से कुछ ज़रूर रख छोड़ती थीं और गदाई को जो कोई जो कुछ देता, वह जाति का विचार छोड़ कर बिना खाये न रहता था।

वे पाठशाला में जाते तो थे पर मन लगा कर लिखना-पढ़ना सीखने के बजाय खेल में घूमा फिरा करते थे। साथ ही अपने साथ दूसरे पढ़ने वाले लड़कों को भी खेलने ले जाया करते थे। उनको जोड़ना-घटाना इत्यादि गणित कुछ भी नहीं आती थी। हां, पाठ-शाला में भगवान का नाम भले लिखा करते थे।

लोगों के घर में ठाकुरजी की कोई मूर्ति बनती थी तो जब तक गदाई उस मूर्तिको देख कर यह नहीं कह देने थे कि मूर्ति ठीक बनी है तब तक गृहस्थ को संतोष नहीं होता था। जब वे देख कर कहते कि मूर्ति का यह अंग सुडौल नहीं बना, तो लोग भी उस अङ्ग को गौर से देख कर स्पष्ट जान जाते थे कि गदाई जो कहता है वह ठीक है।

गदाई इस बात का पता लगाये रहा करते थे कि कहां लीला उत्सव अथवा रामायण व महाभारत की कथा होने वाली है। लीला तथा कथा शुरू होते ही ठीक वक्त पर वहां पहुँच जाते थे।

गदाई की स्मरण और अनुकरण शक्ति इतनी तेज़ थी कि जो एक बार सुनते थे उसे बहुत दिनों तक याद रखते थे और जिस भाव को एक बार देखते थे ठीक उसका अनुकरण कर लेते थे।

उनकी आवाज़ बड़ी सुरीली थी। मधुर स्वर से वे काली तथा राधाकृष्ण के भजन गान किया करते थे। सुनने के लिये लोग उनको बहुत आदर से अपने घर ले जाया करते थे। क्या स्त्री क्या पुरुष सब उनका गान सुनते और सुन कर आनन्दित होते थे।

गदाधर के खेल भी अजीब ही होते थे। अपने बराबर की उम्र वाले बालकों को साथ ले गांव के बाहर कहीं निकल जाते थे और बालकों में से किसी को श्री दामा और किसी को सुवल का स्वांग सजा कर आप श्रीकृष्ण बनते और कृष्ण लीला करते थे, जिसे किसान लोग दूर से चुपचाप देखते और मन में आनन्द पाते थे। कृष्ण की सारी लीला उतनी छोटी उम्र में भी भली भांति उन्हें मालूम थी। बड़ी ही छोटी अवस्था से ही उनकी देवताओं के प्रीति अगाध भक्ति थी। अक्सर मूर्ति बनाते और उसकी पूजा करते तथा बराबर की उम्र के बालकों का उससे मनोरंजन करके उन्हें खुश रक्खा करते थे। छोटी ही अवस्था से वे साधुओं का सङ्ग और साधुओं में प्रीति करते थे। उनके गांव में ज़मीन्दार बाबुओं का स्थापित किया हुआ सदावर्त था। उसमें कभी कभी अनेक साधु सन्यासी आते थे। गदाई उन्हीं साधु सन्यासियों के पास जाकर बैठे रहते थे। साधु लोग भी उनका आदर करते थे और कभी कभी तिलक भी लगा देते थे। कभी कभी साथ घर

देखने भी आते थे। एक दिन गदाई लंगोट पहिन कर घर में आकर बोले—"देखो! देखो!! हम कैसे साधु लगते हैं। आज साधुओं ने हमें सजाया है और रोटी खिलाई है। आज हम घर में कुछ नहीं खायंगे।" इस व्यवहार के बाद पता लगा कि गदाई उस दिन जो नया कपड़ा पहिन कर साधु के पास गये थे उस कपड़े को फाड़ कर उन्होंने तीन टुकड़े करके लंगोट बना लिया था।

पहले ही कह चुके हैं कि बहुत थोड़ी ही उम्र में लोग उनकी अद्भुत प्रतिभा से अचम्भित हो गये थे। एक बार की बात है कि गांव में किसी सज्जन के यहां श्राद्ध में बड़े दूर दूर से ब्राह्मण पण्डित आकर जुटे थे। सभा के दिन बहुत से पण्डितों के बीच गान सम्बन्धी विशेष चर्चा उठी। गदाई १२ या १३ वर्ष का बालक होते हुये भी सभा में एक ओर बैठ चुपचाप सब बातें सुनते थे। जब उन्होंने देखा कि पण्डित-मण्डली प्रयत्न करके भी परमार्थतत्त्व का सिद्धान्त नहीं बांध सकती है, तब आपने उनके बीच में जाकर दो एक ऐसी बातें कहीं कि सभा के सब पण्डितों का मुँह बन्द हो गया और विवाद के असली मतभेद का भङ्ग होकर तत्त्व का फैसला हो गया।

राम कृष्ण की नवीन तरुणावस्था

*ँ खुदिराम चट्टोपाध्याय के तीन बेटे और दो बेटियाँ थीं। गदाई उनके बुढ़ाई के लाड़िले थे। गदाई से छोटी एक बहिन थी। गदाई के जेठे भाई रामकुमार चट्टोपाध्याय महाशय ने कामारपुकुर नामक ग्राम में एक पाठशाला क़ायम की थी। वे छातू बाबू के कृपा पात्र थे, इसलिये बहुत स्थानों से उन्हें निमन्त्रण पत्र आते थे।

सोलह या सत्रह साल की उम्र में गदाई अपने बड़े भाई के साथ कलकत्ते में उनकी पाठशाला में आकर रहने लगे परन्तु वहाँ भी पढ़ने लिखने में उन्होंने मन नहीं लगाया। गांव में जैसे घूमा करते थे, वैसे ही वहां भी इधर उधर घूमने लगे। इन्हीं दिनों की बात है कि गदाई ने एक दिन कहा था कि जिस विद्या से केवल केला और चावल बांधने को मिलते हैं, हमें ऐसी विद्या पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। कलकत्ते में रहते समय वे किसी गृहस्थ के यहाँ विष्णु पूजा के पुजारी थे।

बङ्गाली सन् १२५६ में स्नान यात्रा के दिन कलकत्ते के जानबाजार की प्रसिद्ध रईस रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर नामक स्थान में बहुत धन लगा कर एक कालीबाड़ी बनवाई। प्राणप्रतिष्ठा के दिन बड़े ठाट बाट और धूम-धाम से उत्सव हुआ था।

---

*ँ यह चिन्ह स्वर्गवासी का है। इससे यह समझना चाहिये कि खुदिराम का स्वर्गवास हो चुका था।

श्रीरामकृष्ण के बड़े भाई उसी कालीबाड़ी में पूजा करने के लिये तैनात हुए। उस दिन श्रीरामकृष्णजी भी अपने भाई के साथ वहां दिन भर थे, पर वहां की कोई भी वस्तु उन्होंने नहीं खाई। शाम को एक पैसे की लाई मोल लेकर खाई और फिर कलकत्ते लौट गये। इसके छः या सात दिन बाद फिर अपने भाई की खोज में दक्षिणेश्वर को आये और उसी समय से आप भी भाई के साथ वहीं रहने लगे।

एक दिन मथुरा बाबू श्रीरामकृष्ण का मनोहर रूप देखकर खुश हुये और चाहा कि उन्हें पूजा के काम पर नियुक्त करें। रामकृष्ण नौकरी करना नहीं चाहते थे, पर जेठे भाई के बहुत कहने सुनने से पूजा का काम मंज़ूर कर लिया।

रानी रासमणि जाति की केवट थीं। अतः उनके प्रतिष्ठापित देवालय में किसी पंक्ति का ब्राह्मण भोजन नहीं करेगा, यह बात जान कर रानी रासमणि ने अपने देवालय को अपने इष्टदेव के नाम पर चढ़ा दिया, पर रामकृष्ण का मन खटकता ही रहा। पहिले पहिल तो वे पञ्चवटी के नीचे अपना भोजन आप बनाकर खाते और कभी कभी भोजन करते समय रोते रोते कहते थे—"मातः! धीवर का धान्य खिलाती है।"

पूजा का कार्यभार उठाने के बाद वे ऐसे एकाग्रचित्त होकर पूजा करते थे कि उनकी पूजा करने की विधि देखकर लोग चकित और चमत्कृत होते थे। देवी की पूजा करते समय उनको देखने से लोगों को ऐसा मालूम होता था कि वे देवी को प्रत्यक्ष देखते हुये

पूजा कर रहे हैं अर्थात् भगवती स्वयम् उनके सामने आकर पूजा ले रही हैं।

कभी कभी वे देवी को चढ़ाने के लिये अपने हाथों से फूलों की माला गूंथते थे। कभी कभी देवी के चरणों पर सुन्दर बेलपत्र और जपापुष्प (ओढउल का फूल) अर्पण करके प्रसन्न होते थे। कभी कभी रामप्रसाद, कमलाकान्त, नरेशचन्द्र या अन्य भक्तों के बनाये हुए कालीदेवी के भजन मन लगाकर गान करते और भावना में मग्न होते थे। कभी कभी बिलख बिलख कर कहते थे—"मैया! मुझ पर दया कर। मैया! मुझे दर्शन दे, न मैं धन चाहता हूँ, न प्रतिष्ठा चाहता हूँ, मुझपर दया कर मैया।"

एक बार रामकृष्णजी अपने हाथ से मिट्टी की एक ऐसी सुन्दर शिवमूर्ति बनाकर पूजन कर रहे थे कि मथुरा बाबू उसे देखकर स्तब्ध हो गये। शिवमूर्ति तथा उनके वाहन नन्दी बैल दोनों अङ्ग-प्रत्यङ्ग में ऐसे सुडौल तथा सुथरे बने थे कि देखते ही बनता था। चाहे जिस ओर से देखी जाय प्रतिमा की असीम सुन्दरता थी। यह देखकर मथुरा बाबू बहुत प्रसन्न हुये और रानी रासमणि के पास जाकर बोले—"ऐसा योग्य पुजारी प्राप्त हुआ है कि निस्सन्देह शीघ्र भगवती जागती ज्योति होंगी।"

रानी रासमणि भी श्रीरामकृष्ण की भक्ति देखकर दिन दिन उनपर प्रसन्न होती थीं। रानी जब मन्दिर में आतीं तब रामकृष्णजी के मुख से एकाध भजन अवश्य सुनती थीं। एक दिन की बात है

कि रामकृष्णजी भजन गाते थे और रानी रासमणि चुपचाप उसे सुनती थीं पर उनका मन उस समय भजन के सुनने में न लगकर किसी मुक़द्दमें की ओर चला गया था। उसी समय श्रीरामकृष्ण जी ने कहा—"क्या यहां भी मुकद्मा है?" इतना कह कर रानी के पीठपर एक भरपूर थप्पड़ मार दिया। लोगों ने समझा कि रानी रामकृष्ण पर नाराज़ होंगी, पर रानी ज़रा भी अप्रसन्न न हुईं; बल्कि महात्मा रामकृष्ण की अद्भुत दिव्य शक्ति देखकर अपने मन में बहुत हैरान हुईं।

पूजा करते करते कभी कभी वे इतने बेसुध हो जाते थे कि उस समय उन्हें ख़ुदी का ज्ञान ही नहीं रहता था। एक दिन वे देवी की आरती कर रहे थे। बड़े बिलम्ब तक आरती उतारते रहे। यहांतक कि जो भक्त लोग विजयघण्ट इत्यादि बजाते थे उनके हाथ थक गये पर तब भी आरती पूरी न हुई। अन्त में उन लोगों ने ग़ौर से देखा तो जान पड़ा कि रामकृष्णजी बाह्यज्ञान हीन हो गये हैं। कठ पुतली की तरह उनके हाथ से घण्टा बजता और आरती हो रही है पर वास्तव में वे अचेत हैं। थोड़ी देर में उनका मुंह लाल हो गया और पागल के समान मातः! मातः!! कहते कहते भूमि में भहरा कर गिर पड़े। लोग उन्हें उठाकर बाहर लाये। उनकी छाती आँसू से भीग गई थी। वे विह्वलचित्त पड़े थे और बीच बीच में माता! माता!! कह कर पुकार उठते थे। उन्हें उस सारी रात तथा दूसरे दिनभर बाहरी ज्ञान नहीं हुआ। दूसरे दिन उनके मुँह में भोजन छोड़ना पड़ा। यह दशा कई दिन तक बनी रही।

कुछ दिन पीछे उन्हें देवी के पुजारी के पद से छुट्टी मिली, क्योंकि उनका भाञ्जा हृदय मुखोपाध्याय उनके एवज में पूजा करने लगा। श्रीरामकृष्णजी के मन में जिस दिन आता था उस दिन वे आप पूजा करते थे, परन्तु सांगोपांग पद्धति के अनुसार पूजा करना उनके लिये असम्भव था, क्योंकि वे कब किस भाव में आवें इसका कोई ठीक नहीं था। उनकी यह हालत देखकर लोगों ने समझ लिया कि वे पागल हो गए हैं। मथुरा बाबू ने बड़े यत्न से उनकी चिकित्सा कराई पर किसीसे कुछ भी लाभ न हुआ। वे अपने भाव में भूले रहते थे।

कुछ दिन बीतने पर उनको पागल को तरह रहने की दशा बदलने लगी। उस समय लगभग चौबीस वर्ष की अवस्था में उनका विवाह किया गया। उन्होंने विवाह में कुछ असम्मति नहीं ज़ाहिर की। उन्होंने अपनी अन्तिम अवस्था में किसी से कहा था कि—"विवाह के समय मेरा विचार तो यह था कि मैं अधिक काल तक गृहस्थ रहकर संसार धर्म का निर्वाह करूंगा, पर न जाने कहां से ऐसी बयार बही कि उसने आकर मेरा मन उलट-पलट कर दिया।"

भगवान् रामकृष्ण विवाह के लिये प्रसन्नता पूर्वक देश को वापस गए। उनके गाँव के पास जयरामबाड़ी नामक एक दूसरा गाँव है। उस गाँव के निवासी रामचन्द्र मुख्योपाध्याय की लड़की का जो पाँच वर्ष की थी श्रीरामकृष्णजी से विवाह हुआ। विवाह के बाद उनकी फिर वही हालत रहने लगी और दक्षिणेश्वर में जाकर वे बावले की तरह अपने भाव में मग्न रहने लगे।

बीच बीच में माँ ! माँ !! कह कर वे पुकारते और जगदम्बा से बातें किया करते थे। लोग तो उन्हें पागल मानते थे पर वे असल में संसार के फ़ायदे के लिये तरह तरह की साधना कर रहे थे। वे और किसी से कुछ भी नहीं सीखते थे परन्तु जगन्माता को सुना कर कहते थे—"माता ! आप आकर मुझे सिखा दो तो मैं सीखूँ"। भगवती ने भी उन्हें अनेक उपायों से नाना प्रकार के साधन सिद्ध करना सिखलाया था।

इस युग में भगवान् रामकृष्ण साधकों के लिये एक आदर्श हुए। उन्होंने जगदम्बा से बिनती की—"माता ! तू स्वयं यदि किसी प्रकार से सिखा तो मैं सीखूँ।" जगदम्बा ने भी गुप्त भाव से सिखलाया कि कनक, कामिनी और अभिमान इन तीनों फन्दों से बिलकुल बचना चाहिये। उसी शिक्षा प्राप्ति के कारण एक दिन रामकृष्ण ने गङ्गातट पर बैठ एक हाथ में मिट्टी और दूसरे में रुपया लेकर अपने मन से कहा कि 'हे मन ! यह मिट्टी है, जड़ पदार्थ है, इसमें धान उत्पन्न होकर चावल होता है, पर इससे सच्चिदानन्द नहीं मिलता। इसी प्रकार से रुपये के विषय में भी बोले कि 'हे मन ! यह सिक्का है, इसमें बीबी का चेहरा है, इससे भी धान चावल होता है, दश प्राणियों का भोजन चलता है, पर सच्चिदानन्द प्राप्त नहीं होता। अतः मिट्टी और रुपया एक है'। निदान "रुपया मिट्टी, मिट्टी रुपया" ऐसा कह कर उन्होंने दोनों को एक हाथ में लेके गङ्गा जी में फेंक दिया। स्त्री के विषय में भी उन्होंने इसी प्रकार का विचार करके स्त्री को भी छोड़ दिया।

अहङ्कार को नाश करने के लिये वे कुछ दिनों तक भाँति भाँति की साधना करते थे और माता से प्रार्थना करते थे कि माता! मेरा अहङ्कार नाश कर दे। अरी माता! इसके कारण मैं निपट दीन हीन हूँ, यह भाव मेरे मन में सर्वदा जागृत रहे। इन्हीं दिनों की बात है कि वे झाड़ू लेकर पायखाना झाड़ते थे अथवा कालीबाड़ी के भिखमङ्गों की जूठी पतरियाँ सिर पर उठा कर गङ्गा में ले जाकर फेंक आते थे।

कनक (सोना) कामिनी (स्त्री) और अहङ्कार के भाव मिटने पर एक ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण जी को देखने आई। इस स्त्री ने बहुत दिनों से सुना था कि गङ्गा के तट पर एक महापुरुष टिका है। श्रीरामकृष्ण ने ब्राह्मणी को दिव्यभावयुक्ता जान कर हृदय नामक अपने भाञ्जे से कहा—"उस स्त्री को यहाँ बुला लाओ।" बुलाने पर श्रीरामकृष्ण के पास वह स्त्री पहुंच कर जान गई कि ये ही वह महापुरुष हैं।

ब्राह्मणी सब शास्त्रों की जाननेवाली थी। संस्कृत भाषा का उसने अच्छा अभ्यास किया था। वैष्णव चरण इत्यादि पण्डितों ने भी उसका पाण्डित्य देख कर अचरज माना था। आज तक राम-कृष्ण जी को सब लोग पागल समझते थे। उस दिन उस ब्राह्मणी ने आकर सब को पहिले पहिल समझाया कि रामकृष्ण को कोई रोग नहीं है और न वे पागल हैं। उनमें पागलपन के जो लक्षण ज़ाहिर होते हैं वे लक्षण शास्त्रों में बयान किये हुए भावावेश के हैं।

भगवान् रामकृष्णने सब प्रकार के धर्मों की अलग अलग व्यवस्थानुसार अनुष्ठान करके उनका ज्ञान प्राप्त किया। तन्त्रोक्त साधन से सिद्धि प्राप्त करने पर उनके पास तोतापुरी नामक सिद्ध पुरुष आया। श्रीरामकृष्णने उससे योग की शिक्षा ली और योग करके तीन दिन तक निर्विकल्प समाधिस्थ बने रहे। यह देख तोतापुरी आश्चर्य से बोले—"मैंने इस सिद्धि को चालीस वर्षों में पाया था पर आपने तीन ही दिन में इसे प्राप्त कर लिया। यदि आप ऐसे न होते तो मैं आपके पास इतने दिनों तक ठहरता कैसे ?" तोतापुरी कहीं भी तीन दिन से अधिक नहीं ठहरते थे परन्तु श्रीरामकृष्ण जी का गुण देख कर ग्यारह महीने तक वे दक्षिणेश्वर में टिके रहे। इन्हीं से श्रीरामकृष्ण ने संन्यास लिया और सबसे पहिले इन्होंने श्रीरामकृष्ण को 'परमहंस' कहकर पुकारा।

तदनन्तर एक एक करके उन्होंने पञ्चनामी, बाउल, सिक्ख और इस्लाम इत्यादि मतों का उन धर्मों के मुताबिक रहकर ज्ञान हासिल किया। आश्चर्य यह है कि जब वे जिस मत के अनुसार अनुष्ठान करने में लगे थे तब उस मतका एक न एक सिद्ध पुरुष आकर उनसे भेंट करता था। चाहे अनुष्ठान कठिन से कठिन हो पर उन्हें उसके प्राप्त करने में तीन दिन से अधिक समय नहीं लगता था।

मुसल्मानी धर्मानुसार अनुष्ठान करते समय परमहंस महात्मा ने प्याज़ खाया था। उस समय वे किसी देवमन्दिर में नहीं घुसते थे और न हिन्दू मतका भाव रखते थे। मुसल्मानी मतानुसार तीन

दिन बर्ताव करने पर श्रीरामकृष्णजी को एक बड़ी दाढ़ीवाला तेजोमय मनुष्य दिखाई पड़ा।

ईसाई धर्म का कोई सिद्ध पुरुष तो परमहंस महात्मा के पास नहीं आया, परन्तु श्रीरामकृष्ण महात्मा बड़े मशहूर तथा दाता और गुणवान्, शम्भुचरण मल्लिक महाशय से बाइबिल का पाठ सुनते थे और एक दिन यदुनाथ मल्लिक की बाटिका में घर के भीतर बैठे थे कि वहां टँगी हुई ईसा मसीह की तसवीर से एक कला निकल कर उनके शरीर में घुस गई। ऐसी बात परमहंस महात्मा के मुख से बहुतों ने सुनी है।

श्रीरामकृष्ण की पिछली युवावस्था

बारह वर्ष तक भगवान् रामकृष्ण ने भिन्न भिन्न मतानुसार बड़े बड़े अनुष्ठान करके सब धर्मों की निष्ठा प्राप्त की। जब यह बात रानी रासमणि को मालूम हुई तब वे परमहंस महात्मा में और भी श्रद्धा तथा भक्ति करने लगीं। मथुरा बाबू स्वामी को साक्षात् भगवान् समझ बड़े यत्न से उनकी सेवा शुश्रूषा करते थे। जो बात परमहंस महात्मा चाहते थे मथुरा बाबू वही करते थे।

भगवान् रामकृष्ण छिपे छिपे साधन करते थे, तो भी जब किसी बड़े पण्डित या साधक व्यक्ति का नाम सुनते तो उससे भेंट करने के लिये जाते थे। सब प्रकार की धर्म सम्बन्धिनी सभाओं से

वे हेल मेल रखते थे और जिस किसी साधु सन्त व सिद्ध मनुष्य का आगमन समाचार पाते तो उसके पास जाते थे।

जयपुर के नारायण शास्त्री नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने उनसे दीक्षा ली। ये न्यायदर्शन के बड़े भारी पण्डित थे। बङ्गाल में जब तक रहे अक्सर दक्षिणेश्वर में ही रहते थे। दक्षिणेश्वर के निवासकाल में कभी कभी श्रीपरमहंस महात्मा इन पण्डित जी से न्यायशास्त्र की चर्चा सुनते थे। जब पण्डित महाशय बड़े हर्ष से न्याय के बड़े बड़े तत्त्व पढ़ते थे, उस समय परमहंस जी चुपचाप बिछौने पर लेटे सुना करते थे। पण्डित महाशय न्याय की बड़ी कठिन कठिन बातों का बड़ी पंडिताई के साथ बयान करते थे और श्रीपरमहंस महात्मा तब भी लेटे सुनते रहते थे। थोड़ी थोड़ी देर में बीच बीच में साधारण रीति से दो एक बातें पण्डित जी से पूछते रहते थे कि क्या आपने यही बात कही है या नहीं? उसे सुनते ही पण्डित जी अचम्भित हो जाते थे।

बर्दवान की राजसभा में पद्मलोचन नामी एक सिद्ध पण्डित रहते थे। यह बात सुन कर परमहंस महात्मा ने चाहा कि उनसे भेंट करें। यह बात मथुरा बाबू को मालूम हुई और उन्होंने परमहंस महात्मा को वहाँ ले जाकर पण्डित जी से भेंट कराने का निश्चय किया, किन्तु श्रीरामकृष्ण जी न गये। कुछ दिन बीतने पर सुनाई पड़ा कि बर्दवान के वही पण्डित पद्मलोचन आड़ियादह नामक गांव की किसी वाटिका में आकर ठहरे हैं। यह बात सुन कर परमहंस महात्मा ने पहिले तो अपने भाञ्जे हृदय मुख्योपाध्याय को वहां भेज

दिया और कहा—"देख तो आओ कि पण्डित अभिमानी हैं कि नहीं"। हृदय बाबू वहां गये और आकर कहा—"पण्डित अभिमानी नहीं हैं" यह बात सुन कर परमहंस महात्मा हृदय भाञ्जे के साथ हो पण्डित जी को देखने के लिये गये और भेंट करके अपने हृदय के भाव का एक ऐसा भजन गाया जिसे सुन कर पण्डित जी पानी पानी होगये और उन्हें प्रत्यक्ष भगवान् जान कर बार बार उनकी स्तुति की।

× × ×

इन्देश का गौरीदत्त नामक एक बड़ा विद्वान पण्डित उनसे भेंट करने आया। उसने भी इन्हें साक्षात् भगवान मान कर इनकी पूजा की।

× × ×

जिस समय ब्रह्मसमाज के मुख्य आचार्य बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर आचार्य की वेदी पर बैठते थे, उस समय पुराने ब्रह्मसमाजी लोग कहते थे कि सभा में एक अद्भुत आभा आ जाती थी। एक समय परमहंस महात्मा मथुरा बाबू के साथ समाज देखने गये और वहां युवक केशवचन्द्र को देख कर मथुरा बाबू से बोले—"इस लड़के की बंशी का चारा मछली ने पकड़ा है और शेष जितने उपासक हैं वे तो जान पड़ते हैं कि मानों ढाल तलवार बांध कर बैठे हैं"।

पूर्ण युवावस्था में एक समय परमहंस महात्मा तीर्थयात्रा करने मथुरा बाबू के साथ गये। परमहंस जहां जाकर जो आज्ञा देते थे मथुरा बाबू वही सम्पादन करते थे। इस तीर्थयात्रा में मथुरा बाबू के अस्सी सहस्र रुपये व्यय हुए।

× × ×

काशी जी में बीणा बजाने में बड़ा निपुण एक बंगाली का पता लगा। परमहंस उसकी बीणा सुनने के लिये वहुत बेचैन हुए। मथुरा बाबू ने उसको अपने यहां बुलाया पर वह नहीं आया। तब परमहंस देव हृदयबाबू को साथ लेकर आप ही उसके घर चले गये। उसने बड़े आदर भाव से उनकी अगवानी की और वीणा सुनाई। परमहंस महात्मा उसकी बीणा सुन कर समाधिस्थ हो गये।

× × ×

श्रीरामकृष्ण काशी से वृन्दावन गए और वहां छिपे छिपे वैष्णव का भेष धर कर फिरने लगे। परमहंस महात्मा भगवान की मूर्ति देखते ही समाधि में डूब जाते थे। वृन्दावन में बन बन घूमते उनके कब कब कहां कहां क्या क्या भाव होते थे उन सब का पूरा बयान करना कठिन है।

श्रीरामकृष्ण का जगत् में विख्यात होना

ऊपर वर्णन किये हुये भावों में कुछ दिन रहने पर उनको साधारण लोग जानने लगे। इसका कारण यह है कि इस समय केशवचन्द्रसेन अपने शिष्यों के साथ उनके दर्शनार्थ जाया करते थे। धीरे धीरे उनके पास भीड़ जमने लगी। केशव बाबू के आने से चारों ओर यह हल्ला हो गया कि दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण परम-

हंस नाम के एक महापुरुष हैं। उनकी अद्भुत शक्ति देख कर केशवचन्द्र भी आश्चर्य चकित हो गये। घर घर यह बात फैल गई और स्वामी के दर्शन के लिये लोग आने लगे।

प्रातः काल से लेकर दिन भर लोग उनके घर आते थे और वे भी उनके साथ दिन भर धर्म की चर्चा करते रहते थे। सिर्फ दोपहर को एक बार थोड़ा आराम करना चाहते थे। बाकी दिन भर फिर आराम नहीं करते थे क्योंकि दोपहर को आराम करते समय भी लोग उनके पास ही रहते थे।

जिन केशवचन्द्र के व्याख्यान सुनने के लिये सारी पृथिवी के लोग दौड़े आते, वे ही केशवचन्द्र अनपढ़े श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से कथा वार्ता सुनने के लिये दक्षिणेश्वर में जाते और चुप मार कर बड़ी नम्रता से बैठते थे।

सैकड़ों हिन्दू और ईसाई पण्डित जैसे शशिधर तर्कचूड़ामणि, पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी, पण्डित शिवनाथ शास्त्री इत्यादि ब्रह्मसमाजी परमहंस महात्मा से उपदेश सुनने के लिये उनके पास बीच बीच में जाते थे। कोई कोई तो कभी उन्हें अपने घर भी ले जाते थे। जिसके घर जब कभी परमहंस महात्मा जाते थे, उसके यहाँ बड़ा उत्सव होता था। उनके आने की ख़बर पाते ही अनेकों लोग वहाँ पहुँच जाते थे।

इस प्रकार अगणित स्त्रियों तथा पुरुषों की धर्म में तबीअत लगा कर, अनेकों पापियों का उद्धार कर, धर्म को सहज में सब तरह के मनुष्यों को समझा और अपनी अपरिमित शक्ति और

अथाह महत्त्व को भली भाँति से सुझाकर वे महापुरुष बङ्गाली सन् १२६३ साल के सौर ३१ श्रावण अर्थात् सन् १८८६ ई० १६ अगस्त आदित्य वार की रात्रि में एक बजे अपने स्वरूप को प्राप्त हो गये।

श्रीरामकृष्ण के बालवत् चरित्

संसार का स्वाभाविक नियम है कि उम्र बढ़ने के साथ साथ बालक जवान और जवान बूढ़ा होता है। बाल्यावस्था सुख की होती है। यह कवि के लिये कविता की कल्पना का विषय है, लेकिन भगवान् रामकृष्ण के अनोखे चरित्र में इस नियम का अपवाद हुआ है। क्योंकि वे ज़िन्दगी भर बच्चे की ही तरह बर्ताव कर गये। बुढ़ाई में भी जिस किसी ने उन्हें देखा, बालक की ही तरह पाया और उनके दर्शन से अपना जन्म सफल समझा। इस सम्बन्ध में बहुत सी अद्भुत बातों का ज़िक्र किया जा सकता है। हम उनके विस्तृत जीवन चरित में इस बात को भली भांति लिखने का यत्न भी करेंगे। अभी तो सिर्फ़ दो एक बातें लिखता हूँ।

कोई कोई तो उनका बच्चों सा अद्भुत व्यवहार देख कर उन्हें असभ्य समझते थे। पर जिनका भाग्य अच्छा था वे उनकी अवस्था बढ़ने पर भी उन्हें बालकवत् देख कर आनन्दित होते थे। जैसे लड़के देर तक कपड़ा नहीं पहिने रह सकते वैसे ही देखा गया है कि श्रीपरम-हंस महात्मा भी देर तक वस्त्र पहिने नहीं रह सकते थे। उनकी धोती तो सदा खुली रहती थी और जैसे बालक का कपड़ा खुल

जाने पर उसे लाज नहीं लगती वैसे ही श्रीरामकृष्ण के सामने सैकड़ों राजा, महाराजा, गुणी और ज्ञानी बैठे रहते पर उस समय भी धोती पूरी खुल जाने पर उन्हें किसी की लाज नहीं लगती थी।

एक समय गिर पड़ने से उनका एक हाथ टूट गया। उससे उन्हें बहुत दिनों तक हाथ की पीड़ा भोगनी पड़ी। उन्हीं दिनों की बात है कि हमारे एक मित्र उन्हें पहिले पहिल देखने गये। मेरे मित्र ने मुझसे कहा कि मैंने पहिले परमहंस महात्मा को जाकर प्रणाम किया, तब श्रीरामकृष्ण ने मुझसे पूछा—"तुम कहां से आये हो?" मैंने उत्तर दिया—"मैं कलकत्ते से आया हूँ" तब परमहंस महात्मा हाथ से मन्दिरों को दिखा कर बोले कि "तुम यह सब देखने आये हो?" मैंने कहा—"नहीं, महात्मन्! यह सब देखने नहीं आया हूँ, मैं तो आपके दर्शन को आया हूँ।" यह सुन कर कि मैं परमहंस महात्मा को देखने आया हूँ। परमहंस महात्मा लड़कों के समान रोते रोते बोले—"मुझे क्या देखोगे?" बाबू! मेरा हाथ टूट गया है। आह! बड़ी पीड़ा होती है।" मैं उनका भोले बालकों के समान रोना सुनकर अवाक् हो गया। कुछ न सूझा कि क्या कहूं। तब बड़ी देर के अनन्तर रोना चुप कराने के लिये उनसे कहा—"यह सब अच्छा हो जावेगा। कुछ डर नहीं है।" मेरी बात सुनकर वे भोले बालक के समान खुश होकर बोले—"क्या अच्छा हो जायगा? अच्छा हो जायगा और फिर उसी दम पास के किसी मनुष्य को बुला कर बोले—"ये बाबू कलकत्ते से आये हैं और कहते हैं मेरा हाथ अभी अच्छा हो जायगा।"

एक दिन* रामबाबू और मनमोहनबाबू एक गोभी लेकर परमहंस महात्मा के पास गये थे। उनका अद्भुत बाल्य-भाव देखकर दोनों चकित हुये। उस समय परमहंस महात्मा के पेट से पतला दस्त होता था। श्री रामकृष्ण ने चाहा कि इस बात को हृदय बाबू न जानने पावें, इसलिये उस गोभी को उन्होंने छिपाकर रखना चाहा। दैवात् हृदय बाबू उसी समय वहाँ आ पड़े। तब तो परमहंस जी बड़ी सिधाई से लड़के के तुल्य डर कर बोले—"नहीं हृदय! हमने इन्हें गोभी लाने को नहीं कहा था। ये लोग आप ही इसे ले आये। मैंने तो कुछ भी इसकी चर्चा नहीं की, मैं बिल्कुल सच ही कहता हूँ।"

कोई कोई भक्त श्रीपरमहंस के ही पास रात बिताते थे और वे भी जिसे चाहते थे कि रहे, जब तब अनुरोध करके रख लेते थे। एक दिन कई लोग वहाँ रात को सो रहे थे, आधी रात बीत गई थी, सब गहरी नींद में सोये थे। उसी समय गङ्गा में ज्वार आने का शब्द सुनाई पड़ा। उस शब्द को सुनकर श्रीपरमहंस तुरन्त बिछौने से उठ बैठे और सोते हुये लोगों से बोले—"हे बालको! उठो उठो ज्वार देखने आओ!" यह कहकर सबको फ़ौरन बुलाकर आप नङ्गे दौड़ गये और ज्वार देखकर आनन्द से नाचने लगे। जिन्हें ये बुला आये थे वे अभी धोती ही सँभालते थे कि तब तक क्षण में ज्वार शान्त

---

*परमहंस महात्मा के भक्त स्वनाम से प्रसिद्ध डाक्टर रामचन्द्रदत्त F.R.S. थे।

श्री मन मोहनमित्र राम बाबू के भाई बङ्गाल आफिस के कर्मचारी और श्री रामकृष्ण के प्रिय भक्त थे।

होगया। जगे लोगों ने गङ्गा तटपर जाकर देखा कि परमहंस देव नङ्गे नाचते हैं। उन लोगों को देखकर वे बोले—"अहो! इतनी देर करके क्यों आये?" वे लोग बोले—"देर तो नहीं की, कपड़ा संभालते चले ही तो आते हैं।" परमहंस जी बोले—"धत् कपड़ा सँभालने तक ज्वार रुका रहता है क्या?"

दक्षिणेश्वर में किसी घर में अध्यात्म रामायण होता था। वे उसे सुनने जाया करते थे। कथा में सुना कि रामनाम के उच्चारण से पवित्रता होती है। कुछ दिनों बाद में एक दिन उन्होंने सुना कि कथा कहने वाले व्यास शौच को गये हैं। यह सुनकर उन्हें सन्देह हुआ। व्यास के आने पर उससे उन्होंने घबड़ा कर पूछा—"यह क्या बात है? इतना रामनाम जप कर भी तो आप पवित्र नहीं हुए क्या जिससे शौच को गये? व्यास जी उनका भोलेपन का भाव देखकर बोले—"भैया! राम राम कहने से मन की मलिनता मिटती है।

किसी दिन विश्वविद्यालय का एक उपाधिधारी विद्वान युवा विद्यार्थी उनसे जाकर बोला—"आपकी जो समझ है वह आपके दिमाग़ का फ़ितूर है।" यह सुनकर परमहंस मा! मा!! करते कालीबाड़ी की मूर्ति के पास गये और वहां से लौट कर बोले—"मा कहती हैं कि मेरे मस्तिष्क का दोष नहीं है किन्तु तुम्हारी समझ की भूल है"। परमहंस देवकी दया से उस युवाकी बुद्धि सुधर गई और अब उसने भी संन्यास ग्रहण कर लिया है।

एक दिन काली माता से उन्होंने ज़िद करके कहा—"माता!

आपने मुझे मूर्ख क्यों किया ? मूर्ख शब्द तो गाली है।" उसी समय उन्हें भाव आया और उसमें वे देखते क्या हैं कि आगे एक पहाड़ खड़ा है। उसके देखने से उनकी समझ में यह आया कि माता पूछती है—"कितनी विद्या लोगे।" तब वे बोले—"नहीं मा !"

उनके विवाह में बरात में घर वाले बाजा न ले जा सके इस-लिये सब अफ़सोस कर रहे थे। वे स्वयं अपने मुँह का बाजा बजाते बजाते बरात ले गये।

एक दिन मथुरा बाबूने उन्हें बड़े दाम का दुशाला, चिउलीका कपड़ा और कामदार जूता पहिनाया। थोड़ी देर में वह चिउलीका कपड़ा शरीर पर से खुल कर गिर गया। उसी समय वे बोले—"रजोगुणका भाव आता है रजोगुण का भाव आता है"। मथुरा बाबू बोले—"ठीक है, पर बाबाजी के शरीर पर कपड़ा नहीं है।"

"जैसे भूखे लड़के मांग मांग कर खाते हैं" वैसे ही वे भी अक्सर मांग मांग कर खाते थे और जैसे एक ही बार में लड़के ज्यादा नहीं खा सकते, वैसे ही वे भी ज्यादा नहीं खा सकते थे।

एक बात और है जो लोग कुछ ज्यादा दिनों तक रामकृष्ण के साथ रहे, वे सब जानते हैं कि परमहंस जी पुष्ट और चङ्गेपन की अवस्था में भी पाव कोस भर भी पैदल नहीं चल सकते थे। श्रीश्रीजगन्नाथ देव का प्रसाद पाये बिना वे भोजन नहीं करते थे और सब से कहा करते थे कि "ब्रह्मद्रव वारि" अर्थात् "गङ्गाजल को पिया करो।" किसी का मन उदास होने पर वे बतलाते थे—"तनिक गङ्गाजल पी लो। सब दुःख दूर हो जायगा।" एक वार्त्ता

है कि* किसी वस्तु का भाग जो कोई पहिले ले लेवे अथवा कोई द्रव्य उन्हीं के नाम न लाया जावे या मोल न लिया जावे, उसे वे नहीं लेते थे और न खाते थे। वे कहते थे कि "जिस वस्तु का अंश पहिले कोई निकाल ले तो वह वस्तु जूठी हो जाती है। मैं काली माता को नैवेद्य लगाये बिना कुछ नहीं खाता।"

जैसे लड़के नई वस्तु देखने को बड़े उत्सुक होते हैं और वस्तु के देखने या पाने पर खुशी के मारे उसी में रम कर बहुत प्रसन्न होते हैं, उसी तरह वे भी नई वस्तु देखने के लिये उत्सुक हो उठते थे। एक बार उन्होंने देखना चाहा कि जहाज़ भक् भक् कैसे करता है? यह देखने के लिये उत्कण्ठित हुये। अंत में उनको लोग जहाज़ में ले गये। उस समय उसके देखने से उनके मन की प्रसन्नता की सीमा न थी।

श्री रामकृष्ण का स्त्री भाव

कोई साधक कह गया है कि रामकृष्ण आधा स्त्री भाव और आधा पुरुष भाव रखते थे अर्थात् इन दोनों भावों के मेल से वे एक बच्चे जैसी लीला करते थे। वस्तुतः भगवान् रामकृष्ण के भीतर जैसा प्रबल बाल्यभाव था, वैसा ही स्त्री भाव तथा पुरुष भाव भी

---

* देवी को जूठा चढ़ाना मना है और जो वस्तु भगवदर्पण के वास्ते नहीं लाई गई है या मोल नहीं ली गई है, उसे देवी को अर्पण करना पूजाविधि के खिलाफ़ है।

था। यह बात बड़े जीवन-चरित में मैं उक्त बात की बिवेचना के समय लिखूँगा। यहाँ पर मुख्तसर में सिर्फ़ दो एक उदाहरण देता हूँ। बहुत छोटी उम्र में बालक रामकृष्ण के भीतर कन्या का भाव देखा गया था।

स्त्रियों के समान बड़े हाव-भाव और कटाक्ष के साथ वे बातें करते थे जिससे पुरुष के घर में और ख़ासकर स्त्रियों के महल में वे अक्सर बहुत हिले मिले थे।

एक दिन बालक रामकृष्ण गांव के किसी स्थान में घूमने गये थे। वहां बस्ती के मनुष्य इकट्ठे जुटकर तरह तरह की बात-चीत कर रहे थे। उनमें से एक आदमी शेख़ी से कह रहा था कि बस्ती के सब किसी के घर का हाल-चाल गाँव वाले सुनते जानते हैं पर हमारे घर के भीतर का हाल कोई नहीं जानता। बालक रामकृष्ण यह सुनकर स्त्री के समान कपड़ा पहिन कर जुलाहिन के भेष में उसके घर के भीतर घुसे। उन्हें गाँव में पहिली ही बार आई देख कर और उनकी मीठी मीठी बातें सुनकर घर की सब लड़कियां और स्त्रियां देखने चली आईं तथा उनसे बहुत सी बातें करने लगीं। इस तरह बालक रामकृष्ण बड़ी देर तक उनके घर में बैठकर तरह तरह की बात-चीत करते रहे। बात करते करते रात ज्यादा हो गई और उनके पिता ऊँचे स्वर से उनको पुकारने लगे। पिता की आवाज़ सुन उसी अन्तःपुर से गदाई ने चिल्ला कर आवाज़ दी। उस शब्द को सुनकर स्त्रियां दङ्ग होगईं और कहने लगीं—"क्या! यह लड़की नहीं है? लड़का है? हम लोग इसे नहीं पहचान सकीं

यह अचरज की बात हुई।" बस्ती के सारे लोग यह हाल सुनकर ताज्जुब में आगये।

बहुत से लोग जानते हैं कि रामकृष्ण जवानी में सखी भाव की लीला करते थे और यह भी मालूम है कि सखी भाव की लीला करते समय वे स्त्रियों के समान गहने पहिनते और बाल सँवारते थे। कभी कभी बड़ी बड़ी देर तक स्त्रियों के साथ रहते थे। कुछ दिनों पीछे जब बङ्गाल में स्त्री शिक्षा और स्वाधीनता की लहर उठी, उन दिनों लीला-रसिक श्रीकृष्ण स्त्री के वेश को बनाकर राम-कृष्ण भगवान् ने जान बाज़ार की रानी रासमणि के दामाद मथुरा बाबू के अन्तः पुर में निवास किया था। मैं समझता हूँ, यह बात भी बहुत से लोग जानते होंगे कि जब वे स्त्री के वेश में मथुरा बाबू के घर के भीतर रहते थे उस समय कभी कभी दुर्गादेवी से और कभी कभी काली माता से वार्तालाप करते थे। उसे देख घर की स्त्रियाँ सुखी और चकित होती थीं। मथुरा बाबू के घर में दुर्गापूजा के समय परमहंसदेव स्त्री का भेष धर कर देवी के सामने शक्ति की स्तुति के गान गाते और चमर तथा चमरपँखा इत्यादि झालते रहते थे। फिर कुछ समय बाद भावावेश में आकर वे स्त्री का भेष छोड़ अपने असली रूप में होते थे।

जिन्होंने उन्हें बुढ़ापे में देखा था, वे उस अवस्था में भी स्त्री भाव के उनमें लक्षण बताते हैं। स्त्री किस तरह से पुरुष को मोहित करती है, यह बात उन्होंने बार बार स्त्री बनकर दिखलाई है। एक दिन मेरे (बङ्गभाषा में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता के) सामने वे

स्त्री का वस्त्र पहिन, जैसे स्त्री पति को भोजन कराती है, वैसे हाव-भाव करके भोजन कराने लगे। "क्या आप और कुछ न खायंगे? अरे! हमारे कहने से एक लड्डू ले लीजिये या जलेबी ही ले लीजिये।" इतना कह कर आगे का कपड़ा ढाँकते थे। ऐसी मधुर वाणी से बोलते थे कि वह बात आज तक हमारे मनके भीतर मौजूद है। भोजन कराते कराते वे स्त्री के वेश में ही बोले—"अमुक ब्राह्मण की जेठी पतोहू ने एक बड़ी बढ़िया सात लर की माला बनवाई है, वैसी ही एक माला मेरे लिये भी बन जाय तो अच्छा हो।" परमहंसजी का उस दिन वाला अद्भुत स्त्री-भाव हम लोगों के मन में ऐसा जम गया है कि अब गहने इत्यादि बनवाने के लिये हमारे घर की स्त्रियाँ जब कभी जिद करती हैं तब परमहंसजी के उस दिन के स्त्री भेष के भाव की हमें याद आ जाती है। इसके सामने लुगाइयों की सारी बातें फीकी जान पड़ती हैं।

एक दिन परमहंसजी सिमुलिया गली में *सुरेन्द्रनाथ मित्र के घर पर जिसका नम्बर १७ है गये थे। परमहंसजी इनके यहाँ कभी कभी आया-जाया करते थे। अबकी बार सुरेन्द्र बाबू ने केशव इत्यादि कई लोगों को आमंत्रित किया था। सुरेन्द्र बाबू ने

---

* ये परमहंसजी के मुख्य भक्त और बड़े दाता, गर्वरहित तथा सीधे स्वभाव के आदमी थे। परमहंसजी तथा उनके भक्तों की सेवा के लिये ही उनका जन्म था। सुरेन्द्रनाथजी ने श्रीरामकृष्णजी का एक सुन्दर तैल-चित्र जिसमें उनका धर्मभाव प्रकट है बनाया था। हमारी इस पुस्तक के पढ़ने वाले सब लोग इस चित्र को सुरेन्द्रनाथजी के घर देख सकते हैं।

सब के लिये तो बेला के फूल की एकलरी माला मोल ली थी और परमहंसजी के लिये बढ़िया बेला के चुने हुए फूलों की दोलरी माला (गज़रा) लाये थे। शाम होने पर जब सब लोग इकट्ठे हुए तब सुरेन्द्र बाबू ने ज्योंही परमहंसजी के गले में माला पहिनाई त्योंही उन्होंने उसे निकाल कर फेंक दिया। बाद में उस दिन धर्म की बातें और कीर्तन करते करते परमहंस जी को राधा के भाव की उद्दीप्ति हुई। वे अलौकिक प्रकार से नाचने गाने लगे। इस दशा में सुरेन्द्र बाबू ने उनके गले में दूसरी माला डाल दी। इस बार परमहंस जी उस माला की ओर निहार कर सबके आगे गाने लगे—

भूषण शेष कौन मोहि हेरी।
मैं जग चन्द्रहार गर गेरी ॥

उस समय जिस किसी ने उनका यह स्वांग देखा होगा, उनके मन से उनके उस गान का भाव क्या कभी भूला होगा ?

एक समय होली के दिन वे डोलयात्रा देखने राधाकृष्ण के मन्दिर में गये। वहाँ उन्हें राधिका का भाव आ गया। वे कृष्ण के देह में अबीर लगाते हुए यह गीत गाने लगे।

"आवहु फाग खेलिय गिरिधारी !
तुमहु उड़ाओ गुलाल मोंहि पर हौंहु तोहि पर डारी।
देखन चहौं आज तुम्हरो गुन को जीतै को हारी ॥"

इस तरह गाते गाते ऐसे भाव से वे क्रीड़ा करने लगे कि देखने वालों पर मोहनी सी पड़ गई।

श्री रामकृष्ण का पुरुषभाव

पुरुषदेह धारण कर तो भगवान् रामकृष्ण ने अवतार ही लिया था। अतः उनके आत्मा में पुरुषभाव था। सब जानते हैं कि वे स्त्रियों के साथ बहुत बात चीत करना और उनके साथ रहना नहीं पसन्द करते थे। फिर भी मैं यहाँ यह विचार करूँगा कि जिस राज्य में कोई भी पुरुष प्रवेश नहीं पा सकता, उस राज्य में श्रीराम-कृष्ण जी ने पुरुष रूप से विहार किया था।

मीराबाई नाम की एक धर्मात्मा रानी थी। वह अपने अन्तःपुर में कृष्ण की मूर्त्ति बनवा कर आठों पहर यथा समय नियमानुसार उनकी सेवा किया करती थी। लोग कहते हैं कि वह गान में बड़ी निपुण थी। अकबर बादशाह तानसेन के साथ वैष्णव का भेष धर कर रानी के घर उनका गान सुनने आये थे। रानी उन्हें बादशाह न पहिचान कर अन्तःपुर में लिवा ले गईं। बादशाह तथा तानसेन दोनों भीतर गए। जब रानी भगवान की मूर्ति के सामने गाने लगीं तब तानसेन समझ गए कि इस रानी से गान में हम कम हैं।

जो कोई वैष्णव हो घर में सब किसी की बिना रोक टोक पहुँच होने की बात से रानी का देवर बड़ा बिगड़ा और रानी पर कड़ा पहरा लगाया गया। रानी कोई उपाय न देख छिप कर वृन्दावन भाग गई। वृन्दावन में जाकर उसने श्री मद्‌रूपगोस्वामी का दर्शन पाने के लिये उन्हें बुलवाया। रानी का सन्देश सुन श्रीमद्‌रूप गोस्वामी बोले—

"श्रीवृन्दावन बीच में, करौं आइ के बास।
स्त्री सह संभाषण करन, अहै न मोहिं सुपास॥"

रानी ने यह बात सुनकर उन्हें यह कहला भेजा—

"श्रीवृन्दावन धाम में, सुन्यो न इत दिन आन।
पुरुष बसत हैं कोइ इक, बिना कृष्ण भगवान्॥"

यह सुन कर श्री मद्रूपगोस्वामी लज्जित हो गये और रानी से भेंट करना मंजूर किया। सब भगवान के भक्त जानते हैं कि श्रीवृन्दावन में एक श्रीकृष्णचन्द्र ही पुरुष हैं और शेष सब स्त्री माने गये हैं। वहां अक्सर पुरुष भी स्त्री के समान भगवान की आराधना करते हैं। भगवान् रामकृष्ण जब श्रीवृन्दावन में घूमा करते थे तब उनके भीतर कभी कभी श्रीबृषभानुदुलारी का भाव और कभी कभी श्रीकृष्ण का भाव जगता था। नवद्वीप में जब स्वामीजी गए थे तब उनके मन में चैतन्यदेव का भाव पैदा हुआ था। इसीसे कहता हूँ कि भगवान रामकृष्ण के भीतर साधारण पुरुष का तो क्या महापुरुष का भी भाव बीच बीच में जग उठता था। उनके मन में कभी कभी शिव का भाव भी उबल उठता था। मथुरा बाबू ने भी एक समय उन्हें शिवरूप में तथा दूसरे समयों में दूसरे दूसरे देवों और देवी के भेष में देखा था। इसलिये कहता हूँ कि उनके भीतर पुरुष ही नहीं, महापुरुष का भाव था।

रामकृष्ण की पागल की तरह हालत

जीवन्मुक्त मनुष्य संसार में बालक पिशाच और पागल की भाँति घूमते हैं। यह बात श्रीमद्भागवत में भी कही गई है। भगवान रामकृष्ण भी इन्हीं तीनों प्रकार से संसार में विचरण करते थे।

लड़कपन, जवानी, बुढ़ाई तीनों ही अवस्थाओं को उन्होंने पागल की भाँति व्यतीत किया। बालक गदाई एक तो बड़े सुन्दर थे दूसरे वे बहुत ही मधुर बोलने वाले थे, परन्तु पढ़ने लिखने में कोशिश न करने के कारण बहुत से लोगों ने उन्हें बुद्धू समझा था।

अधेड़ उम्र में भी रानी रासमणि की काली-बाड़ी में जिन्होंने उन्हें देखा था पागल ही समझा था। दक्षिणेश्वर के पास अँड़िया-दह में अब भी कुछ ऐसे लोग हैं जो उन्हें पागल ही समझे रहे होंगे।

भगवान् रामकृष्ण जब गङ्गा के किनारे गिर कर माता! माता!! पुकारते थे, उस समय उनका वह भाव देख कर बहुत से लोग कहते थे—"यह बालक बिलकुल बावला हो गया है।" परन्तु सब लोगों को विशेष कर अँगरेजी पढ़े हुए लोगों को यह जानना चाहिये कि धन-मद इत्यादि से तथा मादक पदार्थ के सेवन से जो लोग पागल हो जाते हैं उनमें और जीवन्मुक्तों में ज़मीन आसमान का अन्तर होता है। ये दोनों ही जुदा तरह के पागल हैं।

भगवान् रामकृष्ण की जिन्दगी में पागलपन की ऐसी दशा दिखाई पड़ी है कि यदि दो एक महापुरुष उन्हें न समझ पाते तो

उनको कोई पहचान भी न पाता। दुनियादार लोगों की तो बात ही अलग है, इस समय ऐसे साधु भक्त भी तो नहीं मिलते जो उन्हें भली भाँति चीन्ह सकते। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी कहते हैं—"मैंने एक से एक भाव और भिन्न भिन्न मत के साधु-सन्तों को देखा है पर एक ही जगह सब भाव से युक्त और सब मतों में सिद्ध श्रीरामकृष्ण ही मुझे मिले हैं। आज तक दूसरा कोई ऐसा दिखाई ही नहीं पड़ा। ये तो जगत की नई सृष्टि जान पड़ते हैं। एक समय की बात है कि परमहंसजी ने दुनियावी चीज़ों से अपने मन को इतना हटा लिया कि उनकी सब हरकतें बंद हो जाने से वे बिना जान के पिंड की तरह मालूम पड़ने लगे। इसी वक्त एक योगी दक्षिणेश्वर की फुलवारी में आया और उनकी यह हालत देख कर सोचने लगा कहीं ऐसा न हो कि उन्हें जड़ समाधि लग जावे। इस वजह से उनके मनको देह का ज्ञान करने के लिये उसने उनकी पीठ पर छड़ी से मारा। कुछ दिन तक उसे उनकी पीठ पर रोज ऐसा करना पड़ा। ऐसा करने से उन्हें जड़-समाधि तो नहीं लगने पाई पर छः महीने तक उनका दुनियावी चीज़ों का ज्ञान ग़ायब रहा।

छः महीने बीतने पर धीरे धीरे दुनिया की वस्तुओं का ज्ञान उनमें आने लगा। उस दिन के बाद से वे हमेशा संसार की भलाई में लगे रहे। यद्यपि यह बात बहुत दिनों से फैली है कि सभी धर्म और सच्चे मत ठीक हैं, पर अब तक लोग उसका असली अर्थ समझ न पाते थे। परन्तु परमहंसजी ने उसे समझा और जान कर जगत को बतलाना चाहा कि इस घोर कलिकाल में केवल ज़बानी

उपदेश से तत्त्वज्ञान नहीं होता। वे बारी बारी से हर एक धर्म के अनुगामी हुए और उस धर्म के मुताबिक़ चलकर संसार को दिखा दिया कि जितने धर्म प्रचलित हैं, सब में एकही ईश्वर का सच्चा स्वरूप झलकता है।

इसी मतलब से छिपे छिपे परमहंसजी ने तरह तरह की साधनाएँ कीं, फिर भी लोग उनका भीतरी भेद न जान कर उन्हें पागल पागल कहा करते थे। जब अपने भाव में मस्त होकर वे दिन दिन भर गङ्गातीर पर बैठे बिता देते थे और शाम को बालू में नाक रगड़ते और कहते थे कि "मा ! दिन तो बीता, मुझे दर्शन दे !" उस समय लोग उनके दिल की असली वेदना तो समझ न पाते थे; केवल बिना समझे बूझे उन्हें पागल कहा करते थे।

लोगों का उन्हें पागल कहना एक तरह से ठीक भी था क्योंकि जब वे कपड़े की पूंछ लगा हनुमान की तरह पेड़ पर बैठ कर "रघुबीर हो ! रघुबीर हो !" चिल्लाते थे उस समय दुनिया के लोग उन्हें पागल न कहते तो क्या कहते ?

वे कभी कभी अल्लाह अल्लाह भी कहते थे। कभी देवी के मन्दिर में जाते तो देवी के पाँव पर फल और बेलपत्र न चढ़ा कर वहां जिस किसी नौकर चाकर या वस्तु को देखते उसी की पूजा करते और कभी सख्यभाव में डूबकर कृष्ण के बिरह में घबड़ा कर पेट दबा कर रोते थे और कभी कृष्ण को लपटा कर कहते थे "भाई कन्हैया ! अब तो भाई तुम्हें न छोड़ूंगा।"

जिन दिनों सब लोग उन्हें पागल समझ बैठे थे उन दिनों लोगों से छिपे छिपे भगवान् रामकृष्ण जितने धर्म हैं, उन सब को अपने अनुभव द्वारा सिद्धि-साधन करते थे और यही आश्चर्य है कि प्रत्येक धर्म का एक सिद्धपुरुष आकर उनके आगे खड़ा होता था। चाहे कैसा भी साधन हो, उसे स्वामी तीन दिन में सिद्ध कर लेते थे।

बुढ़ाई में भी उन्हें जिन्होंने देखा था उनका कहना था कि उनकी पागल की सी हालत तब भी नहीं बदली थी। एक दिन परमहंस जी ने सिंह देखना चाहा। पं० शिवनाथ शास्त्री ने उन्हें अलीपुर के चिड़िया घर में ले जाकर सिंह दिखाने को कहा और दिन भी निश्चित किया। तै किये हुए दिन को पण्डितजी परमहंसजी को सिंह दिखाने के लिये अपने साथ वहां ले गये और देखा कि परमहंसजी पागल की तरह कहते हैं—"माता! आपका वाहन देखना चाहता हूं। माता!" चिड़िया घर में पहुँचते ही पहिले उन्होंने सिंह देखा, बाद में दूसरे जानवरों को देखने के लिये जब उनसे कहा गया तब वे बोले—"पशुराज को तो देख लिया अब और क्या देखें?"

श्रीरामकृष्ण की पिशाच जैसी हालत

इस हालत में कभी कभी यह घटना हुई है कि परमहंसजी बाहरी दुनिया के ज्ञान को इस कदर भूल जाते थे कि धोती पहिने हुए ही मल-त्याग कर देते थे और उसी अशुचि दशा में मन्दिर में घुस कर देवमूर्त्ति को छू देते थे। यह देखकर मन्दिर के अधिकारी लोग उनके पिशाच भाव पर नाराज़ होते थे।

पूजा करते करते कभी वे अद्वैतभाव से ऐसे भर जाते थे कि उन्हें नौकर और मालिक का भाव भूल जाता था और अपने आप को तथा सब जीवों को देवी ही समझने लगते थे। किसी समय की बात है कि उनके घर एक बिल्ली म्याऊँ म्याऊँ करती हुई आई। वे उसको लेकर देवी पर चढ़ाये हुए प्रसाद को खिलाते खिलाते बोले—"माता! जो तू ही बिल्ली के रूप में म्याऊँ म्याऊँ करती है तो ले इस बिल्ली को खा।"

जब वे विष्ठा लेकर पूजा करते थे तब भी उनका पिशाचभाव स्पष्ट था और जब वे मल लेकर अपनी जीभ में छुलाने लगे तब तो बहुत से लोगों ने उन्हें पिशाच समझ कर उनसे बहुत ही घृणा की।

रामकृष्ण और कनक (सोना)

भगवान् रामकृष्ण का ख़ास उपदेश था कि—"कामिनी (स्त्री) और कनक (सोना) छोड़े बिना ईश्वर की प्राप्ति नामुमकिन है। इस बात को लोगों के मन में पक्की तरह बैठाने के लिये वे एक हाथ में रुपया और दूसरे में मिट्टी लेकर कहते थे कि रुपया मिट्टी है और मिट्टी रुपया है।" इसी तरह कहते कहते अन्त में उनके भीतर ऐसा विचार आ गया कि वे किसी धातु को नहीं छूते थे। यदि किसी धातु का कभी स्पर्श हो जाता तो उनका हाथ आप ही आप टेढ़ा सा हो जाता था।

एक दिन उन्हें बाग़ में घूमते घूमते एक जगह पर एक पक्का आम मिला। उसे पड़ा देख वे उठाना चाहते थे पर ज्योंही उसे उठाने लगे त्योंही उनका हाथ टेढ़ा सा होगया जिससे वे उसे उठा न सके।

शम्भुचन्द्र मल्लिक परमहंसजी के परमभक्त थे। वे परमहंसजी को अक्सर अपनी फुलवारी में ले जाकर ईसाइयों की बाइबिल पढ़ कर सुनाते थे। एक दिन उस बाग़ में परमहंसजी का पेट बिगड़ गया। उस तकलीफ को मिटाने के लिये शम्भू बाबू ने उन्हें अफीम खिला दी। परमहंसजी ने आधी अफीम खाकर आधी ज़मीन पर रख दी। लौटते वक्त उनकी तबियत हुई कि उस टुकड़े को साथ लेते चलें पर ज्योंही उसको लेने लगे त्योंही उनका हाथ टेढ़ा सा हो गया। इसलिये वे उस अफीम के टुकड़े को नहीं ले आये।

मथुरा बाबू ने एक बार परमहंसजी को एक अच्छा रेशमी कपड़ा लाकर दिया। उस कपड़े को पहिनकर वे ध्यान करने लगे। ध्यान कर चुकने पर अपने इष्ट देव को दण्डवत् करने गये। उसी समय उनके मनमें यह विचार हुआ कि दण्डवत् करने से रेशमी कपड़े में धूल लगेगी, अतः तुरन्त उन्होंने उस कपड़े को खोल कर फेंक दिया और अपने इष्टदेव को नंगे ही प्रणाम किया।

एक मित्र कहते हैं कि मैं एक दिन परमहंसजी के पास गया और देखा कि वे एक कीमती पहनने वाले कपड़े पर थूक रहे हैं और उसे बार बार धूल में घसीट कर कह रहे हैं—"तुझे पहिले बड़ा घमण्ड था। अब देख तू कैसा विवश है।"

एक धनी जैन मारवाड़ी का लक्ष्मीपट नाम का पोता एक बार परमहंसजी से आकर बोला—"मैं देखता हूँ कि आपको खाने पहिनने की तकलीफ़ है। इसलिये आपके नाम पर कई हज़ार रुपये लिख देने के लिये मैं कम्पनी का काग़ज़ लाया हूँ, जिससे उसके सूद से गुज़र आपकी हो। आपको ये रुपये लेने होंगे।" परमहंसजी ने रुपये लेना क़बूल नहीं किया। पर वह बार बार लेने के लिये बिनती करता रहा। अन्त में ऊँचे स्वर से स्वामी जी कलप कर कहने लगे कि माता! तू ऐसे लोगों को यहाँ लाती क्यों है जो तेरे पास से मुझे हटाना और तेरे और मुझमें फर्क़ डालना चाहते हैं? वे मेरे पूरे बैरी हैं।" यह कहते कहते उनकी समाधि लगी। जागने पर मारवाड़ी ने उन्हें नाराज़ जान कर उनसे माफ़ी मांगी

और स्वामी जी ने अपनी स्वाभाविक सिधाई से मधुर भाषण करके उसे धीरज दिया।

मथुरा बाबू ने भी परमहंसजी के नाम पचास हज़ार रुपये कम्पनी के काग़ज़ पर लिख दिये थे पर परमहंस जी ने उन रुपयों को कभी भी नहीं लिया। मथुरा बाबूने बहुत समझाया और कहा—"इनके लेने में दोष क्या है? आपको कुछ भी न करना पड़ेगा। केवल आपके पास क़ाग़ज़ रक्खा रहेगा और उसका सूद मैं खुद लाकर दिया करूँगा। इसके लिये आपको कुछ भी न करना पड़ेगा।" परमहंस जी ने कहा—"सच है! मुझे कुछ न करना पड़ेगा पर रुपये लेने से मेरे मन में एक दाग लगेगा कि ये मेरे रुपये हैं।"

परमहंस देव जब मथुरा बाबू के घर जाकर भजन सुनने बैठते थे, उस समय मथुरा बाबू उनके हाथ से पियाला दान करवाते थे। उनका खजाञ्ची आकर पूछता था—"कितने रुपये लाये जायँ?" मथुरा बाबू कहते थे—"एँ, कितने रुपये लाये जायँ? अच्छा? एक तोड़ा भर रुपये लाओ।" यह सुन कर वह एक हज़ार रुपयों का तोड़ा ला देता था। मथुरा बाबू पचीस पचीस रुपये गिन गिन कर परमहंस के पास में अलग अलग कतार से रखते थे। प्याला दान करने के वक्त परमहंसदेव उन रुपयों को अपनी हथेली को उलट कर एक एक बार में पांच, सात या दस थोक उठा कर प्याला दान करते थे।

मथुरा बाबू परहंसजी को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने गये

और उस तीर्थयात्रा में उनके अस्सी हज़ार रुपये खर्च हुए। इसकी वजह यह थी कि जिसे परमहंसजी देने को कहते, उसे मथुरा बाबू वहीं दे देते थे। परमहंस जी की ही आज्ञा से मथुरा बाबूने दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी के आगे नाट्य मन्दिर में धान्यमेरु नाम के स्थान और अपने पैतृक गुरुद्वारों के बनवाने में बड़ा धन लगाया था।

रामकृष्ण और कामिनी (स्त्री)

भगवान् रामकृष्ण स्त्री मात्र को माता की दृष्टि से देखते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपनी विवाहिता स्त्री का सहवास कभी नहीं किया। उनके भाञ्जे हृदय बाबू ने तरुण रामकृष्ण का स्त्री से उदासीन देखकर बहुत समझाया था पर समझाने से क्या होता है ? सब बातें व्यर्थ थीं अन्त में हृदय ने एक नौकरानी को मिलाकर उसके द्वारा जवान औरत को बुलवाया और उसे रात में परमहंस जी के सोने के घर में भेज दिया पर उससे भी कुछ नतीजा न निकला। लाभ के बदले हृदय बाबू ने उस बार परमहंस जी की खूब फटकार सुनी।

इसके बाद मथुरा बाबू ने भी एक दिन देखना चाहा, उन्होंने मछलीबाज़ार में किसी रूपवती वेश्या के साथ बात करके अपने घर में सुन्दरी सुन्दरी वेश्याओं को अच्छे अच्छे कपड़े पहिना कर बैठा रक्खा और परमहंस जी को उनके बीच में ले जा कर छोड़ दिया। परमहंस जी उनके बीच में जाकर "आनन्दमयी

-माता ! आनन्दमयी माता !!" कह कर उनको प्रणाम करने लगे और उनके बीच में बैठ कर फिर "आनन्दमयी माता आनन्दमयी माता" कई बार कह कर समाधि में डूब गये। वेश्याएं परमहंस जी के भाव को देख कर डर गईं। कोई उन्हें पंखा झलने लगी, कोई अपने को अपराधिनी मान कर क्षमा मांगने लगीं। निदान मथुरा बाबू शर्मा गये और परमहंस जी में उनकी भक्ति और भी बढ़ गई।

एक बार रानी रासमणि ने भी उनके पास एक वेश्या भेज दी थी और उस बार भी वे उस वेश्याको देख कर माता ! माता !! कहते समाधिमग्न हो गये थे। कोकशास्त्र में विशेष पटु एक सुन्दरी वैष्णवी ने कलकत्ते में किसी मनुष्य से सुना कि दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण नाम के परमहंस हैं। उनका केशवचन्द्रसेन ऐसे लोग भी आदर करते हैं। वह वैष्णवी अनेक तीर्थ घूमी हुई थी और उसने अनेक साधु, महन्त और तपस्वी देखे थे। वह जहां जाती थी वहीं थोड़े ही दिनों में अपनी सुन्दरता से सब धन लेकर आप धनी बन जाती थी। वही वैष्णवी अपनी सुन्दरता और कोकशास्त्र के ज्ञान के घमंड से परमहंस जी के पास आई। उस समय परमहंस जी के पास और लोग भी बैठे थे। वैष्णवी परमहंस जी को प्रणाम कर एक ओर खड़ी हो गई। उसी समय परमहंसजी को शौच जाना था। शौच के लिये चले गये और यह चतुर स्त्री कमण्डलु लेकर सेवा में पीछे पीछे चली। परमहंस जी आगे आगे चले जाते थे और यह पीछे पीछे चली जाती थी। परमहंसजी बाग़ के उत्तर

आम के पेड़ के नीचे एक झाड़ी में बैठे और वह वैष्णवी थोड़ी दूर पर कमण्डलु लिये खड़ी थी। परमहंस जी शौच होते होते दो ढेलों को लेकर निरे बालक की तरह झाड़ी में ही खेलने लगे। उनका वैसा लड़के का सा स्वभाव देख कर वैष्णवी रोकर बोली—"मैंने अनेक साधु देखे पर ठीक तुम्हारे ही ऐसा एक भी नहीं देखा। हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा करिये, मैं बड़ी अपराधिनी हूँ।"

एक बार वैष्णवचरण परमहंसजी को काछीबाग में नौजवान रसिकों के अड्डे पर ले गये। परमहंसदेव ने वहाँ की स्त्रियों का गंदा भाव देखकर वैष्णवचरण को बहुत फटकारा। तामसी प्रकृति का बयान करते वक्त परमहंसजी बहुतों से उस दिन का वहाँ की एक स्त्री का बर्ताव अकसर सुनाया करते थे, कि वह स्त्री गलफर में पान भर कर परमहंस जी की देह से अपनी देह घिस कर कहती थी कि "भाई! पान और सुर्ती बिना मैं नहीं रह सकती।"

यह बात दुनिया भर में सरनाम है कि जान बाज़ार में जब मथुरा बाबू के घर पर परमहंस जी रहते थे, उस समय मथुरा बाबू जिस बिछौने पर अपनी स्त्री के साथ सोते थे उसी बिछौने के पास ही एक दूसरे बिछौने पर परमहंस जी बालक की तरह सोते रहते थे क्योंकि इस बात को मथुरा बाबू अच्छी तरह जानते थे कि रामकृष्ण के मन में विकार का नाम भी न था।

दीन रामकृष्ण

सैकड़ों हजारों आदमियों ने देखा था कि भगवान रामकृष्ण को जब कोई प्रणाम करने जाता था तो वे उसको पहिले ही प्रणाम कर बैठते थे।

परमहंस जी ने सबको स्वयम् दिखला दिया कि कैसे अहङ्कार दूर होता है और नम्रता से कैसे रहना होता है। माता देवी के प्रति रो रो कर वे यह प्रार्थना किया करते थे कि "माता! मेरा अहङ्कार दूर कर दे, री माता ऐसी प्रार्थना करके वे कहते थे कि मैं नम्रों से नम्र और दीनों से दीन हो जाऊँ। देवी से वे यह भी प्रार्थना करते थे कि "माता मैं कुछ नहीं जानता हूँ, न आदर चाहता हूँ, न मान चाहता हूँ, मेरा अहङ्कार हटाकर मुझे दीन से भी दीन और हीन से भी हीन बनादे।

एक दिन एक पतला दुबला दीन किसान पावँ में धूल लपेटे एक लतड़ी पहिने उसे फट् फट् चटकाता रामकृष्ण जी के पास आ उन्हें पुकार कर बोला—"क्या हो रामकृष्ण!" ऐसे पुकार कर वह उनकी गद्दी पर आकर बैठ गया। फिर श्री रामकृष्ण के शरीर पर हाथ रख कर बोला—"एक चिलम तम्बाकू पिलाओ भैया!" परमहंस जी उसी समय झट चिलम चढ़ाने उठे। उनके पास के भक्त लोगों ने उसी समय उनके हाथ से चिलम और तम्बाकू लेकर भर दिया। वह मनुष्य चुपचाप तम्बाकू पीकर थोड़ी देर बाद "भाई मैं राम हूँ" ऐसा कहकर वहां से चला गया। उसके चले जाने पर

सब लोग परमहंस जी से कहने लगे—"आप तम्बाकू भरने क्यों गये ? यदि आप हम लोगों से कहते तो तम्बाकू भर दिया जाता।" यह सुन परमहंस जी बोले—"भर दिया तो क्या ? उसमें हानि ही क्या है ?"

× × × ×

एक दिन कृष्ण नगर के किसी भले आदमी के घर परमहंसजी गये। वहाँ उस समय दीनबन्धु न्यायरत्न भी उसी मनुष्य के घर उससे भेंट करने आये। ये न्याय शास्त्र के बड़े मशहूर पण्डित थे। परमहंसजो ने उन न्यायवेत्ता जी को देखते ही प्रणाम किया, पर नैयायिक जी ने उन्हें प्रणाम नहीं किया और बोले—"आप मेरे प्रणाम के योग्य हैं क्या ?" यह सुनकर परमहंसजी बोले—"मैं दासानुदास हूँ, सभी हमारे मान्य हैं।" पण्डित जी बोले—'मैं जितना पूछता हूँ, उसका उत्तर दीजिये। आप मेरे प्रणाम के योग्य हैं कि नहीं ?' परमहंस जी विनय पूर्वक बोले—'मैं संसार भर में सबसे नीच हूँ, सबके सेवक का भी सेवक हूँ, सब मेरे मान्य हैं।' तब पण्डित जी बोले—'आपने मेरी बात नहीं समझी। आपके देह में जनेऊ नहीं है, यदि आप सन्यासी हैं तो मैं आपको हाथ जोड़ूं। अतः पूछता हूँ कि आप संन्यासी हैं ?' अहङ्कार शून्य रामकृष्ण ने अपने मुख से न कहा कि मैं संन्यासी हूँ। बहुत पूछने पर कहा कि "हाँ मैं संन्यासी हूँ।"

परमहंस जी एक दिन बाटिका में घूम रहे थे। उसी समय कलकत्ते का एक मशहूर डाक्टर उनके पास गया और उन्हें माली

जानकर आज्ञा दी कि जूही के फूल तोड़ लाओ। परमहंस जी ने उसी समय उसकी आज्ञा मान बहुत से फूल ला दिये। बीमारी की हालत में उनका इलाज करते वक्त उसी डाक्टर ने आश्चर्य से कहा—"मैंने यह क्या अनर्थ किया था? अहो! मैंने यह क्या किया था? इन्हीं को तो मैंने उस दिन फूल तोड़ लाने को कहा था।"

जब परमहंस जी विष्टा और चन्दन को समान समझते थे, उस समय किसी ने मसख़री में उनसे कहा कि "अपना मल कौन नहीं छू सकता?" यह सुनकर परमहंस जी ने मन में विचारा—'यह आदमी सच ही तो कहता है।' उनके मन में यह बात ऐसी जमी कि वे उसी समय जहाँ बाटिका में सबका मल-मूत्र पड़ा था, वहाँ से उसे उठाकर मिट्टी के समान उसे फेंक आये।

दयालु रामकृष्ण

यद्यपि रामकृष्ण जी इस संसार के मामूली आदमियों की तरह नहीं थे तो भी इस संसार में ही हम लोगों के सामने वे लीलायें कर गये। इसका कारण सिर्फ़ उनकी दया ही थी। यदि रामकृष्ण परमेश्वर थे तो अन्य जीवों के समान कड़ी कड़ी साधनाएँ क्यों करने गये? दयासे, मयासे, दया ही के कारण से।

किसी मूर्ख ने उन्हें भली भांति समझते हुए भी कहा कि "आप जहां चाहें चले जा सकते हैं तो फिर यहां केवट का भात क्यों खाते

हैं ? साधारण बिछौने पर क्यों सोते हैं ?" यह सुनकर परमहंसजी उठकर पञ्चवटी के नीचे चले गये। वहां उनके मन में यह विचार आया—"यह कैसा नीच बुद्धि है। हम सागूदाना भी खाकर लोगों की भलाई करें तो अच्छा है, हमें लाखों क्लेश मिलें वह भी अच्छा है। हे माता ! यदि सागूदाना खाकर मैं लोगों का भला कर सकूं तो करूँगा।"

करुणावतार श्री रामकृष्ण दुखियों का दुख नहीं देख सकते थे और दीन दुखिया जो उनके पास जाता उसका दुःख वे ज़रूर दूर करते थे। इस बात की गवाही देने वाले सैकड़ों मनुष्य अब तक जीवित हैं।

एक बार एक दुःखिया स्त्री चार दिन लगातार कालीबाड़ी में भोजन करने आई। एक दिन वहां के द्वारपाल ने उस ग़रीब को मार दिया। यह बात सुन कर परमहंस जी रोने लगे और बोले—"माई ! यह तेरी बुद्धिमानी है कि दो दाने के लिये उस दुःखनी पर मार पड़ी"।

× × × ×

एक दिन परमहंसजी जब मथुरा बाबू के साथ गङ्गा में नाव पर घूम रहे थे, उन्होंने रानाघाट के पास कलाई घाटा नाम की ग़रीबों की एक बस्ती देखी। उस गाँव में किसी भी आदमी के पास पहिनने को पूरा कपड़ा न था। सभी मैले कुचैले चिथड़े लपेटे हुए थे। उनकी यह हालत देखने से जान पड़ता था कि उन्हें अन्न भी शायद ही कभी मिलता होगा। दीनदयालु रामकृष्ण उनकी दशा

देख कर रो पड़े और बोले—"माई ! तेरे संसार में ऐसे दुःखी लोग भी हैं ? माता ! तू तो दयामयी है, तुझ में इतना भेद भाव क्यों है ? कोई तो तेरी दया से धन भर कर रहे और कोई पेट भर दाने के लिये भी तरसे।" फिर उन्होंने मथुरा बाबू से उन्हें उत्तम भोजन खिलाने और प्रत्येक को एक एक नया कपड़ा देने को कहा। मथुरा बाबू ने उन सब को एक हफ्ते तक भोजन कराया और एक एक नया कपड़ा भी हर एक को दिया।

× × × ×

एक दीन भक्त परमहंस के समीप पहिले जिस दिन गया उस दिन उनके पास से चलते वक्त जब उनके पैर छूना चाहा तब उन्होंने अपना चरण हटा लिया। उनके पाँव हटा लेने पर उसने अपने को पापी समझ कर मनही मन कहा—"हाय ! मैं नारकी जीव किस साहस से उनके श्रीचरणकमल छूने गया था ?" उस दिन से वह साधक जब परमहंसजी के पास जाता था तब दूर ही से प्रणाम करता था और चरण धूलि लेकर दूर ही बैठता था। पास जाने का साहस कभी नहीं करता था। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन परमहंसजी के पास जब वह भक्त गया और परमहंसजी ने उससे घर का दर्वाज़ा बन्द करने को कहा, उस समय वहां कोई न था। ज्योंही वह दर्वाज़ा बन्द करके परमहंसजी के पास एकान्त में बैठा, त्योंही एकाएक परमहंसजी की पागल की सी हालत हो गई। उनकी आँखें लाल हो गई और एक अनजानी बोली में चिल्ला चिल्ला कर घर के इस कोने से उस कोने और उस कोने से इस कोने घूमने

लगे। यह देख कर वह भक्त डर गया। उस वक्त परमहंसजी के पांव में फुंसी बड़ा तनाव किये थी। जब वह साधक डर गया तब कृपालु रामकृष्ण ने पागलपन छोड़ बालक-भाव धारण कर के फुंसी की पीड़ा से बेचैन हो बोले—'ओह! पाँव बड़ा तना है। तुम ज़रा इसे सहला दो।' इतना कह साधक के पास पाँव बढ़ा दिया। उस वाञ्छित श्रीचरणकमल को छू कर रोमाञ्चित हो साधक ने पाँव को अपने माथे पर रख लिया। पर जैसे ही उसने अपने माथे पर उनका पाँव रक्खा त्योंही परमहंस जी ने अपना पाँव खींच कर फिर पहिले की हालत में हो गये और इस बार पाँव के तनाव से और भी ज्यादा बेचैन होकर बोले—'अरे! बड़ी पीड़ा होती है, ज़रा सहला तो दे।' अब की बार वह भक्त हिम्मत करके और भी भक्ति पूर्वक ज्योंही श्रीचरणसरोज को प्रणाम करने लगा त्योंही फिर उन्होंने बड़े ज़ोर से पाँव खींच कर अपने उन्माद के लक्षण को और बढ़ा दिया। ऐसे कई बार परमहंसजी ने उससे पाँव सहलाने को कहा और वह जब जब श्रीचरणकमल को प्रणाम करता था वे उसी समय पाँव खींच लेते थे। वास्तव में इस ढंग से उन्होंने छिपे छिपे उसके ऊपर कई बार दया की। इसी से कहता हूँ कि ऐसी दया तो न सुनी न देखी है।

× × × ×

एक बार जिस समय परमहंसजी किसी नये आये हुए भक्त की प्रशंसा कर रहे थे; उसे सुन कर कृष्णनगर के रहने वाले एक पुराने भक्त के मन में यह बात पैदा हुई कि नये आये हुए भक्त की तो स्वामी

जी इतनी तारीफ़ करते हैं पर हम लोगों की कभी नहीं करते । क्या हम लोग भक्त नहीं हैं । फलतः इसी विचार से वह भक्त परमहंसजी के पास कम जाता था । परमहंसजी भी मित्रों से उसका हाल पूछ लिया करते थे—'वह कैसा है ? आता क्यों नहीं ? उसे एक बार समझा बुझा कर यहां लाओ' इत्यादि कह कर वे उस भक्त को बुलवाते थे तो भी वह नहीं आता था । कुछ समय बाद एक दिन वह भक्त जिस समय सुबह गङ्गा में नहा रहा था उसी वक्त एक नाव घाट पर आ लगी । उस नाव में उस भक्त ने पहले अपने पहचान के एक मित्र को और फिर परमहंसजी को देख कर बड़ा आश्चर्य किया । परमहंस जी उससे भेंट करने ही आये थे । उसके पास आकर वे बोले—"दक्षिणेश्वर में आइये ।" उनकी अगाध दया देख वह भक्त बड़ा मोहित और विनीत हो गया ।

× × × ×

जो लोग परमहंसजी को देखने कलकत्ते से जाते उनके सम्बन्ध में दयालु परमहंस इस बात की चिन्ता पहिले ही से करते थे कि कब और कैसे वापस जायँगे । जिन लोगों को जानते थे कि बराह नगर से गाड़ी पर जायँगे उनके जाने का समय होते ही कहते थे कि इसी समय जाओ, नहीं तो गाड़ी नहीं मिलेगी और जो लोग पैदल चल कर बराह नगर तक नहीं जा सकते थे, उनके लिये स्वामी स्वयम् गङ्गा के किनारे जाकर नाव की खोज करते थे । भक्ति के कारण पैदल चलकर जाने वाले असमर्थ ग़रीब मनुष्यों को वे उस दिन वहीं रखते थे । किसी किसी को गाड़ी भाड़ा दिलाते थे और

कभी कभी निर्धन भक्तों को वे धनी भक्तों के साथ नाव या गाड़ी पर जाने का प्रबन्ध कर देते थे।

× × × ×

एक समय की बात है कोल्हूटोले से पढ़े-लिखे लोगों का एक दल गङ्गा में नाव पर चढ़ रात में कीर्तन करता हुआ परमहंसजी के पास आ रहा था। कीर्तन बहुत सुंदर ढंग से हो रहा था। उन भक्तों ने उत्तरपाड़ा तक कीर्तन करते करते जाने और बाद में परमहंसजी के पास जाने का विचार किया था। दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी के सामने से जब वह नाव गङ्गा की मझधार में जा रही थी। उस समय उस दल के कुछ लोगों ने दक्षिणेश्वर की ओर मुँह करके देखा कि कोई मनुष्य हाथ के इसारे से उन लोगों को अपनी ओर बुला रहा था। पर उन लोगों ने थोड़ी देर में लौट आवेंगे इस विचार से उधर कुछ ध्यान न दिया, पर अन्त में जब वे उत्तरपाड़ा होकर कालीबाड़ी में पहुँचे तब सुना कि केशव बाबू ने गाड़ी भेज दी थी। इसलिये स्वामी जी अभी ही कलकत्ते गये हैं। तब उन लोगों ने समझा कि दया-सागर परमहंसजी ही खड़े होकर उन्हें बुला रहे थे। सचमुच परमहंसजी अति दयालु थे। उस दिन भेंट न होने का उन लोगों के मन में बड़ा पछतावा हुआ।

× × × ×

एक धार्मिक हिन्दू अक्सर परमहंसजी के पास आया-जाया करता था। जिस दिन वह आता उस दिन दोपहर को वह भोजन न करता था, शाम को घर पर जाकर ही भोजन बना कर खाता

था। परमहंसजी बीच बीच में उसे खाने को कहते थे पर वह भोजन नहीं करता था। ऐसे ही बहुत दिन बीते। अन्त में परमहंस जी जब अपने स्वरूप को प्राप्त होने के क़रीब आये थे उसके थोड़े दिन पहिले एकादशी के दिन वह हिन्दू भक्ति के साथ परमहंसजी का दर्शन करने आया। उस दिन श्रीरामकृष्णजी ने बड़े आग्रह से उसे भोजन करने के लिये कहा। वह भक्त बड़े संकोच में पड़ा कि यदि भोजन करूँ तो एकादशी का व्रत टूटेगा और यदि भोजन न करूं तो परमहंसजी के आग्रह की उपेक्षा होगी। इस विचार से वह कुछ भी न बोल कर चुप हो रहा। परमहंसजी ने सबसे कह दिया कि आज बहुत बढ़िया बढ़िया भोजन बना कर इसे खिलाओ। जब भोजन तैयार हो गया तो लोग उस भक्त को भोजन करने के लिए बुलाने आये। भक्त को न सूझा कि क्या करूं। परमहंसजी ने लोगों से पूछा—"सब तैयार है?" वे बोले—"हाँ।" तब परमहंसजी बोले—"ले जाओ इसे भोजन कराओ।" पर वह भक्त नहीं उठता था। यह देखकर परमहंसजी उससे इस तरह बोले कि वह भक्त उनकी बात की उपेक्षा न कर सका और उठ कर वहाँ से चला। सब लोग भोजन करने के स्थान में उसे ले गये। वह भक्त उन ले जाने वालों की बात भी न टाल सका और उनके साथ चला गया, पर भोजन वह किसी भाँति नहीं करता था। लोगों ने उसे खिलाना चाहा पर वह न कुछ बोलता था न भोजन करता था। अन्त में हार मानकर लोगों ने परमहंसजी के पास जाकर कहा—"न तो वह भोजन करता है और न कुछ कहता है, चुपचाप बैठा है।" परमहंस

जी बोले—"पकवान वाली थाली यहां तो ले आओ"। थाली वहां लाई गई। परमहंस जी उस थाली में से कुछ पकवान आप खा कर बोले —"अब ले जाओ उसे खिलाओ।" भक्त परमहंस जी का प्रसाद जिसके पाने की इच्छा उसे बहुत दिनों से थी, पा कर सुख से भोजन करने लगा।

प्रेममय रामकृष्ण

भगवान रामकृष्ण जीवों पर जिस प्रकार का प्रेम करते थे वैसा प्रेम और कहीं देखने में नहीं आता है। हज़ारों आदमी उनका दर्शन करने जाते थे पर कैसे आश्चर्य की बात है कि उनके बर्त्ताव से मन में सभी समझते थे कि परमहंस जी के परम प्रिय हमी हैं।

× × × ×

एक ब्रह्मसमाजी मित्र प्रायः बिलख बिलख कर कहा करते थे कि "हाय! मैं कैसा अभागा हूँ कि एक बार भी परमहंस जी का दर्शन करने न जा सका।" एक दिन कलकत्ते के हाट खोला वाले बनियां टोले के * अधर बाबू के यहां परमहंस जी गये हुए थे। मैं (बंगला में इस पुस्तक के लिखने वाले) भी उनकी भेंट के लिये वहां गया हुआ था। मुझसे परमहंस जी से कुछ ही भेंट थी, पर चलते वक्त वे प्रेम के कारण मुझसे बोले—"क्यों जी तुम तो हमारे यहां

* अधरचन्द्र सेन डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलेक्टर थे। आप परमहंस जी के अनन्य भक्त थे।

और कभी नहीं आते।" जिस समय परमहंस जी यह बात कह रहे थे उस समय उनकी आंखों से अश्रुजल बह रहा था।

× × × ×

एक दिन परमहंस जी के पास मैं गया तो देखा, एक नवयुवक बैठ कर क्षणिकवाद की चर्चा कर रहा है। थोड़ी देर में वह उठ कर पेशाब करने बाहर गया। उस समय परमहंस जी हम लोगों से बोले—'जानते हो यह कौन है? यह न परमेश्वर को मानता है न देवता को। साधु संन्यासियों को चोर-जुवारी कहता है और हमको भी दाम्भिक समझता है'। वे यह कह रहे थे उसी समय वह युवक घर में फिर आया। परमहंस जी बड़े आदर से हँसते हँसते फिर उससे बहुत सी बातें करने लगे और जब वह अपने घर जाने लगा तब आग्रह से बार बार उससे वे बोले—"एक दिन और आना। किसी दिन फिर एक बार यहाँ आना।" हम लोग उनका मनुष्यमात्र से प्रेम देख कर कुछ नहीं कह सके।

× × × ×

परमहंस जी पहिले ही दिन दो घड़ी बात करके मनुष्य को अपने प्यार से ऐसा वशीभूत कर लेते थे कि शत्रु भी हो तो वह उनका प्रेम भाव देख कर चकित हो जाय। बिदा लेकर चलते वक्त जब वे महा मधुर बाणी से कहते थे—"एक वार और आना।" तब कौन ऐसा होगा जो उनके प्रेम भाव पर न्यौछावर न हो जाता?

भगवान रामकृष्ण जैसे प्रेम से एक ओर लड़कों को बैठाते थे,

वैसे ही दूसरी ओर नशेबाज, जिद्दी, कामी और पापियों को भी बैठाते थे। यद्यपि लड़कों और बूढ़ों को वे बराबर भाव से प्यार करते थे तथापि लोग कहते हैं कि उनका बालकों में प्रेम अधिक था।

साधु के पास ख़ाली हाथ न जाना चाहिये। यदि और कुछ न हो एक हर्र ही लेकर जाना उचित है। यह पुराना नियम आज कल के युवक नहीं जानते, अतः परमहंस जी के पास कोरे हाथ जाते थे। परन्तु परमहंसजी बहुत दिनों से लेना छोड़ बैठे थे, अतः वे किसी से कुछ नहीं चाहते थे और न किसी से कुछ मांगते ही थे। वे किसी से यह कहते भी न थे कि ख़ाली हाथ साधु से भेंट करने जाना अनुचित है जिसे वे खूब जानते थे और अपना लिया था, उससे कभी धीरे से कहते थे कि 'कल हमारे लिये एक पैसे का कुछ लेते आना'। जो कोई उनके पास जाता था बिना खाये नहीं लौटने पाता था, यदि और कुछ न रहता तो एक डली मिश्री ही खिला देते थे *।

---

* हम लोग बड़ी नम्रता से प्रार्थना करते हैं कि परमहंस जी का जीवन चरित पढ़ने वाला प्रत्येक आदमी परमहंस जी के जन्मोत्सव की बधाई में दान पुण्य करे और जैसे परमहंस जी बिना खिलाए किसी को भी नहीं जाने देते थे, उसी प्रकार आये गये को कुछ ज़रूर खिलावे। उनके जन्म के दिन खाली मुंह किसी के यहाँ से कोई न लौटने पावे। फाल्गुण शुक्ल द्वितीया को उनका जन्म हुआ था। उसी दिन के पहले या पीछे पड़ने वाले आदित्यवार को दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी में उनका जन्म-दिवस महोत्सव बड़े आनन्द से मनाया जाता है।

सूचना—पहिले यह उत्सव दक्षिणेश्वर में होता था पर अब ज़िला हावड़े के बेलूर गाँव के मठ में होता है।

उनके भक्त लोग उनके लिये उत्तम उत्तम पदार्थ भेंट ले जाते थे और वे सब को आदर से लेकर लोगों को खिला देते थे। जैसे माता मिठाई मिलने से अपने लड़के के वास्ते रख छोड़ती है, वैसे ही स्वामी जी भी अच्छी बुरी वस्तु पाकर भक्तों के वास्ते रख छोड़ते थे और दूसरे दिन उन्हें चतुराई से बुला कर खिला देते थे।

एक दिन एक मित्र ने परमहंस जी को जाकर देखा कि उनकी आँखें डब डबाई हैं और वे रोते हैं। मित्र ने रोने का कारण पूछा तो वे बोले—"उस आदमी से हमें कई बातें कहनी थीं। वह कई दिन से नहीं आता। मनुष्य से बुलवा भेजा तब भी वह नहीं आया।" मित्र ने कहा—'कहिये तो मैं उसके घर पर जाऊँ, क्या मेरे जाने पर भी वह न आवेगा?' यह सुनकर परमहंसजी प्रसन्न हो कहने लगे कि यदि ऐसा करो तो अच्छा ही है। यह सुन वह मित्र उस युवा पुरुष के घर गया और परमहंस जी की बात सुनाकर अपने साथ ले आया, वह युवा पुरुष उनकी इतनी अधिक कृपा जानकर स्तम्भित हो गया।

परमहंसजी जो किसी के घर जाते थे तो बच्चों के लिये अँगौछे में अच्छी अच्छी खाने की चीज़ें साथ बांध ले जाते थे और लड़कों को पहिले ही कहलाये रहते थे कि अमुक दिन हम अमुक स्थान पर जायंगे बने तो तुम आ जाना। बालकों के आने पर उनके हाथ में वे पुटली दे देते थे और कहते थे कि "एक किनारे जाकर सब कोई बांट कर खाओ" और जब सुनते थे कि अमुक लड़का अभी नहीं

आया है पीछे आवेगा, तो कहते थे कि "उसका भाग रख कर और सब खा जाओ।"

× × × ×

किसी समय कलकत्ते के बाबू अधरचन्द्र बनियां टोले में अपने घर परमहंसजी को ले गये और बड़ा उत्सव किया। उस समय परमहंसजी के साथ बड़े बड़े भक्त आये थे। उत्सव होने पर सबको * चतुर्विध वस्तु भोजन कराई गई। अधर बाबू जाति के सुनार थे। अतः एक ब्राह्मण ने उनके यहाँ भोजन नहीं करना चाहा। परमहंसजी तो कुछ न बोले परन्तु पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी परमहंस जी की ओर देख कर उस ब्राह्मण से बोले—'खाने में दोष क्या है? प्रेम पूर्वक वर्ताव करके एक एक कर सबको अपना बना लेना होगा।' परमहंसजी विजय बाबू की बात सुनकर बड़े ख़ुश हुए और जब हम लोग परमहंसजी के पास गये तो मुझसे इस बात की चर्चा कर उन्होंने विजय बाबू की प्रशंसा की और कहा—'देखो ध्यान करो। विजय बाबू कैसे बुद्धिमान् जान पड़ते हैं। उन्हें सबको अपना बना लेना अच्छा लगता है।'

---

* चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीकर खाने वाली चार प्रकार की भोजन की 'चतुर्विध' चीज़ें होती हैं।

अलौकिक रामकृष्ण

लड़कपन, जवानी, अधेड़पन सभी अवस्था में भगवान् रामकृष्ण के भीतर अद्भुत शक्ति देखकर सब लोग वशीभूत हो जाते थे। हम विस्तृत जीवन चरित में इस सम्बन्ध में विशेष लिखेंगे। यहाँ पर उनकी शक्ति की केवल दो एक साधारण झलक दिखावेंगे।

× × × ×

एक समय की बात है कि उड़ीसा के एक ब्रह्मसमाजी की स्त्री का देहान्त हो गया उस ब्रह्मसमाजी ने अपनी सब जायदाद बेच कर कई हज़ार रुपये श्रीयुत बाबू केशवचन्द्र को दे दिये और आप दीन-हीन बन कर समाज में धर्म का प्रचारक बन गया। उसका वैराग्य, सहन शीलता और तप देखकर उस समय सब लोग अचम्भित थे। एक दिन वह मनुष्य केशवचन्द्र के साथ परमहंस जी के पास गया। उस मनुष्य को देखते ही परमहंस जी ने केशवचन्द्र से पूछा—'क्यों केशव! तुमने इस मनुष्य को कहां पाया?' केशव बाबू के किसी साथी ने परमहंस जी के प्रश्न के उत्तर में उस मनुष्य का नाम और गांव बतला कर उसके त्याग का वर्णन किया। यह बात सुनते ही परमहंस जी बोले—"यह अब भी आमड़े की खटाई खायगा। (अर्थात् अभी तो यह फिर संसारी होगा) अन्त में हुआ भी यही। उस मनुष्य का वैराग्य का झोंका थोड़े दिनों में ऐसा घटा कि नाम को भी वैराग्य न रहा। अचानक एक दिन उसने अपने रुपये के लिये वकील से चिट्ठी लिखाकर भेजवाई और नालिश करने

को धमकी दी। फिर अपने सब रुपये लेकर ब्राह्म-दल को छोड़ चला गया।

भगवान् रामकृष्ण कहा करते थे—'मनुष्य की आँख शीशे का पर्दा है, जैसे शीशे के पर्दे से घर के भीतर की चीज़ें देख सकते हैं, वैसे ही मैं भी मनुष्य की आंख देखकर पहिचान सकता हूँ कि उसके मन में क्या है?'

× × × ×

वे अक्सर कहा करते थे कि मनुष्य की देह काँच की आलमारी है। जैसे काँच की आलमारी के भीतर की वस्तु बाहर से भी दिखलाई पड़ती है। वैसे ही मुझे भी मनुष्य का शरीर देखते ही मालूम हो जाता है कि उसके भीतर क्या है, क्या नहीं है।

× × × ×

एक मित्र कहते हैं—'मेरी पत्नी बार बार कहा करती थी कि मुझे अनुमति दो तो किसी समय मंत्र ले लूं। पर मैंने उससे कहा कि परमहंस जी से इस बात में राय लिये बिना मैं कुछ नहीं कह सकता।' परमहंसजी उस समय बीमार थे। इस कारण मैं उनसे कुछ पूछ न सका। इसी बीच में मुझे आफ़िस में एक चिट्ठी मिली कि मेरी स्त्री मेरी अनुमति की प्रतीक्षा न करके हमारे इष्ट देव का मंत्र ले चुकी है। पत्र पढ़ते ही मेरा मन ऐसा चिढ़ा कि मैं तुरन्त काशीपुर को चला गया। उस समय परमहंस जी की हालत मरने के क़रीब थी। डाक्टरों ने कह दिया था कि उन्हें भक्तों से अधिक बार्तालाप न करने देना। इसी से भक्तों ने मुझसे कह दिया कि तुम

परमहंस जी को केवल देखकर चले आना कुछ बात न करना। मैंने विचारा कि जो आया हूँ तो एक बार उन्हें प्रणाम कर लूं। मैंने जाकर प्रणाम किया। प्रणाम करते ही परमहंस जी ने इसारे से मुझे पंखा झलने को कहा। मैं उनकी आज्ञानुसार पंखा डुलाता ही था कि एक दूसरा भक्त घर में आया। परमहंस जी ने कहा कि उस आदमी की स्त्री के घर का हाल इससे क्यों नहीं कहते? मैं उनकी बात कुछ न समझ सका, परन्तु उस बात के जानने की मुझे बड़ी इच्छा हुई। इस कारण उस भक्त से मैंने आग्रह करके वह बात पूछी। वह मनुष्य बोला—'एक आदमी की स्त्री ने पति की आज्ञा लिये बिना मंत्र लिया है जिससे उसका पति क्रोध से अन्धा होकर परमहंस जी के पास हाज़िर हुआ है।' परमहंस जी ने उस मनुष्य की बात सुनकर उससे कहा—"तेरी स्त्री जो ऐसा काम करे तो तू क्या करेगा?" यह सुनकर वह भक्त चुप हो गया। तब परमहंसजी ने उससे कहा कि अनुचित कार्य से तू उसे नहीं रोक सकता, तो भला कार्य करने से क्यों रोकता है?" यह बात सुनकर वह मित्र आश्चर्य में पड़ गया।

कलकत्ते के बाग़बाज़ार के 'बलरामवसु' * के घर परमहंस

---

* ये श्याम बाज़ार के प्रसिद्ध कृष्णवसु के वंशज थे। महात्मा कृष्णवसु ने माहेश का रथ और कटक से जगन्नाथपुरी तक २६ मील की सड़क बनवाई थी और उसके दोनों ओर आम के पेड़ की चार पंक्तियां लगाईं थीं। इनके सात्विक भाव के साक्षी, महेश, कलकत्ता, पुरी, भद्रक, कोट्टार, बृन्दाबन इत्यादि स्थानों में इनके अब तक मठ और कुञ्ज मौजूद हैं। इनके बंश के सब लोग

जी अधिक आते जाते थे। बलराम बाबू ने केवल आपही परीक्षा करके नहीं देखा था वरन् और लोगों को भी दिखाया था कि जो वस्तु परमहंस जी के भोजन के लिये आती थी, उसे छोड़कर दूसरी वस्तु का वे भोजन नहीं करते थे। बलराम बाबू उन्हें जिस पात्र में भोजन परोसते थे उसमें देवताओं के भोग की तथा कभी-कभी लड़कों के खाने की कुछ वस्तु वे जान बूझ कर मिला देते थे। पर परमहंसदेव जी उसमें से अपने निमित्त लाया गया भोजन तो अलग करके खा जाते थे, शेष दूसरों की वस्तु कदापि नहीं खाते थे।

एक दिन परमहंस जी ने हमारे एक विश्वासपात्र मित्र से कहा—"क्यों जी तुम्हारे यहाँ का बेल पकने लगा या नहीं?" वह मित्र बोला—"अभी तो हमारे यहां बेल पकने का मौसिम नहीं आया। उसके पकने में दो तीन महीने की देर है?" यह सुन परमहंसजी बोले—'हां देखो! मैं समझता हूँ कि शायद दो चारफल मिलें'। यह सुन उस दोस्त को आश्चर्य हुआ। वह उसी दम कृष्ण नगर नामक गाँव में चला गया। उसने अपने घर जाकर बेल के पेड़ को बल पूर्वक झुका कर भरपूर झकझोरा पर एक भी पका बेल (फल) न गिरा। आखिर उससे वह निरस्त हुआ, पर रात भर उसी चिन्ता में उसे नींद नहीं आई। दूसरे दिन सवेरे बेल के पेड़

धर्मात्मा, भक्त और सात्विक हिन्दू हुए हैं। बलराम बाबू धनी होकर भी अपने बंश के सद्गुणों से भूषित थे। ये मदहीन बालक के समान सीधे सादे महा पुरुष थे। इनका बंश बहुत दिन से देवता और भगवद्भक्तों का सेवा करता आता है। भगवान और भक्त इस बंश के लोगों के मानों प्राण हैं।

के नीचे फिर ज्योंही वह गया त्योंही उसे तीन बार धप धप शब्द सुनाई पड़ा। फल के गिरने का शब्द सुन कर आगे बढ़ने पर उसने देखा कि सचमुच चार साबित पक्के बेल गिरे हैं। उसने उन्हें उठा कर तुरन्त दक्षिणेश्वर भेज दिया।

एक मित्र कहते हैं कि एक दिन मैं परमहंस जी के दर्शन के लिये गया। परमहंस जी ने मुझे जरा पङ्खा झलने को कहा। मैं पंखा हांकता था कि वे सो गये, परन्तु तब भी मैं पङ्खा हांकने से नहीं रुका, हांकते हांकते मेरे हाथ भर गये। मैंने सोचा—'परमहंसजी तो इस समय सोते हैं फिर मैं क्यों थकूँ।' उसी समय परमहंजी की आंख खुली, उन्होंने मेरा हाथ रोक कर कहा—'ठहरो! बस अब मत हांको'।

एक दूसरे मित्र मुझसे कहते हैं कि एक दिन मैं परमहंस जी के पास गया। मैंने देखा कि वे उदास हो बरामदे की सीढ़ी पर बैठकर रोते थे। उसका कारण मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैं धीरे धीरे उनके पास गया और धीरे से पूछा—'आप क्यों रोते हैं'? उन्होंने उत्तर दिया कि "एक व्यक्ति बहुत तकलीफ़ में है। उसका हाल लेने के लिये मैंने रामलाल को भेजा। नहीं मालूम रामलाल अभी तक क्यों नहीं आया"? परमहंस यह कह ही रहे थे कि जिसके लिये वे रो रहे थे, उसी समय उनके पास आ पहुँचा * यह देख मैं बड़े अचरज में पड़कर चुप हो रहा।

---

* जिसके लिये परमहंस जी रो रहे थे वे और कोई नहीं स्वामी विवेकानन्द जी थे। स्वामी विवेकानन्द अमेरिका तथा चिकागो के धर्म मेले

एक दिन की बात है कि परमहंसजी के पास बहुत से लोग इकट्ठे थे। उस समय वे बोले—"मेरा मन चाहता है कि हींग डाली गरम कचौड़ियाँ खाऊँ"। यह सुन कर एक भक्त बोला—'आज्ञा हो तो इसी समय कलकत्ते जाकर कचौड़ियाँ लाऊँ'। परमहंसजी ने कहा—'नहीं, नहीं चाहिये, क्योंकि कलकत्ते से लाई जाने पर कचौड़ी गरम कैसे रहेगी'? अहो! उसी समय एक भक्त हींग डाली गरम गरम कचौड़ियां लिये परमहंसजी के पास पहुँचा। वह मनुष्य पहिले परमहंस जी के पास आता जाता था परन्तु बीच में बहुत दिनों से नहीं आया था। अचानक उसके आने से सब को आश्चर्य हुआ। एक मित्र परमहंसजी के पास जब कभी अकेले जाते थे तभी परमहंस जी उनसे पूछते थे—'भला तुम्हारा काम कैसे चलेगा'? वह अपने पावों खड़ा होने वाला मनुष्य इससे पहिले सौ रुपये की नौकरी छोड़ बैठा था। उसे भोजन की कुछ भी फ़िक्र न थी। "कैसे चलेगा? तुम क्या करके खाओगे"? इत्यादि वाक्य

(Parliament of Religions) में हिन्दूधर्म पर व्याख्यान दे आये और सुनने वालों पर गहरा प्रभाव छोड़ा। अमेरिका के प्रत्येक नगर में बहुत समय तक हिन्दूधर्म का प्रचार किया। हिन्दी में इस ग्रन्थ के अनुवाद काल में विवेकानन्द जी परलोकवासी हो गये थे। अमेरिका वालों ने उनके व्याख्यान से शान्तिफल और चमत्कार प्राप्त किया। तीस वर्ष की अवस्था में इस हिन्दू संन्यासी की अद्भुत बोधशक्ति, असीम ज्ञान, अनुपम साहस और असाधारण विद्वत्तापर पाश्चात्य लोग चौकन्ने हो गये थे। परमहंस के संन्यासी भक्तों में ये एक भक्त थे। इनमें विचारशक्ति, अद्भुत तेज और उत्तमोत्तम अनेक गुण थे। इसका अधिक वर्णन इनके व्याख्यान की पुस्तक में देखिये।

परमहंस जी के मुख से सुनकर वह हंसता था और समय समय पर रोकता भी था कि आप चिन्ता न कीजिये। फिर भी परमहंसजी कभी कभी पूछते ही थे कि "तुम्हारा कैसे चलेगा"? दस वर्ष बीतने पर उसी मित्र ने कहा कि 'अब परमहंस जी की अन्तर्दृष्टि-शक्ति का प्रभाव प्रकट होने से मैं आश्चर्य करता हूँ। मेरा निर्वाह कैसे होगा? इस प्रश्न का भाव मैं इस समय समझता हूँ कि वह मेरे भीतर गुप्त रूप से बना है। अहो! 'दस वर्ष के बाद मुझे जो बात अब सूझी है, मैं समझता हूँ कि वही बात परमहंस जी दस वर्ष पूर्व ही से जान चुके थे, जिसे मैं हँसी में उड़ा दिया करता था।'

नैपाल के राजप्रतिनिधि कर्नल विश्वनाथ उपाध्याय जिस समय घुसड़ी गाँव के साल की लकड़ी के कारखाने में काम करते थे उस समय एक बार रात में उन्होंने एक सपना देखा कि एक मनुष्य तत्त्वज्ञान देने के लिये उनको बुलाता है। उसके बाद कुछ दिन बीतने पर वे इत्तिफ़ाक़ से एक दिन दक्षिणेश्वर में आए और वहाँ परमहंस जी को देख उन्हें पहिचाना कि ये ही वे पुरुष हैं जिन्होंने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया था। परमहंस जी को उस स्वप्न में देखे हुए पुरुष को समझकर उन्होंने यह एक दैवी घटना मानी। परमहंस जी ने उनसे ऐसी बातें कीं कि मानों पहिले से कुछ पहिचान थी।

परमहंस जी दक्षिणेश्वर में रह कर भी दूर दूर की बातें दिव्य दृष्टि से देखते और जैसी की तैसी कह भी देते थे। वे मनुष्य के मन की बातें और भाव बता देते थे। इन सिद्धियों के अतिरिक्त परमहंस जी में यह भी योगशक्ति थी कि दोनों भौहँ के बीच में जो

'द्विदल कमल' है, उसे वे स्वयं विकसित कर लेते और उसकी कर्णिका में काली, दुर्गा, शिव, राधाकृष्ण इत्यादि दिव्य प्रकाशयुक्त देवताओं का आविर्भाव करके उनका दर्शन भी करते थे। उसी के साथ उन के हृदय में स्फुरित होकर बिना प्रयत्न किये ही ईश्वर का नाम मुख से निकलता रहता था। दक्षिणेश्वर में रहते हुए उन्होंने आप अपने शरीर से श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी को ढाके में जाकर दर्शन दिया और मथुरा बाबू को अपने शरीर में शिव और काली की मूर्ति दिखलाई। उनका छायात्मक देह अब भी बना है। इस प्रकार की बहुत सी अद्भुत अद्भुत सिद्धियां वे रखते थे। उनका विस्तार से यहां वर्णन नहीं हो सकता।

परमहंसजी अवतारी पुरुष थे

दूसरे दूसरे भाव के समान अवतार-भाव भी उनमें सब दशा में देखा गया है। उनका अलौकिक जन्म उनके पिता का स्वप्नदर्शन, गर्भ में अवस्थानकाल में माता को अनेक देवों और देवियों का दर्शन होना, छः वर्ष की उम्र में माता को सोलह वर्ष का होकर अपने को दिखाना इत्यादि उनके जीवन में अनेक अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं जिनसे उनका अवतारी पुरुष होना स्पष्ट रूप से प्रकट होता है।

जो लोग ऊपर की घटनाओं पर विश्वास करने में हिचकिचाते

हों, उन्हें स्मरण होना चाहिये कि परमहंस जी न तो राजा थे, न जमीं-दार थे। उन्होंने एक दरिद्र ब्राह्मण की झोंपड़ी में छोटा बालक होकर जन्म लिया था। उनके सम्बन्ध में इतनी जनश्रुति कैसे फैल गई? उक्त घटनाएँ उनके शिष्यों की निजी गढ़न्त भी नहीं हैं। ज़रा गौर से सोचने से ही मालूम हो जायगा कि इसका कोई ख़ास कारण ज़रूर था। उनके गांव के रहने वाले कुछ पुराने लोग अब तक साक्षी हैं, जो कहते हैं कि वे घटनाएँ सत्य हों व ग़लत, परन्तु श्रीभगवान् रामकृष्ण के सम्बन्ध में उनके लड़कपन से ही वे उन सब बातों को सुनते चले आ रहे हैं।

उनके गाँव के ज़मींदार गङ्गाविष्णु लाहा की माता गदाई को बड़ा प्यार करती थीं। बढ़िया व घटिया जो कुछ उन्हें मिलता था गदाई के लिये वे रख छोड़तीं और उत्तम उत्तम भोजन बना कर गदाई को भोजन कराती थीं। वे बीच बीच में कहती रहती थीं कि 'मैं समझती हूँ तू मनुष्य नहीं है कोई देवता है।' ऐसा सुना गया है कि कामारपुकुर का रहने वाला एक बूढ़ा दुकानदार परमहंसजी के लड़कपन में उनके अद्भुत भाव देख कर कहा करता था कि ये मनुष्य नहीं हैं; वरन् लीला करने के लिये भगवान् स्वयं अवतार लेकर आये हैं।' वह ऐसा विश्वास करने के कारण एक दिन परमहंसजी को मैदान में अपने साथ ले गया और उनके हाथ में एक दोना भर सुन्दर भोजन पदार्थ देकर शोक करता हुआ बोला—'गदाई! तुम्हारी आगे आने वाली अद्भुत लीला मैं न देख पाऊँगा।'

आगे चल कर उनकी मध्यलीला में भी यही भाव दिखाई पड़ता

है। परमहंसजी ने मथुरा बाबू से एक बार कहा था—'मेरे सब भक्त हैं। माता ने कहा है—वे भी आवेंगी।' मथुरा बाबू कभी कभी कहते थे—'बाबा! आपके भक्त आये क्या?' और कभी कभी मथुरा बाबू यह भी कहते थे—"बाबा! आपको दूसरे भक्तों से क्या करना है? मैं अकेला ही आपके सौ भक्तों का कार्य करूँगा। आज्ञा दीजिये! जो करना हो मैं अभी उसे करूँ।"

उसी समय (अर्थात् मध्यलीला में) परमहंसजी को भक्तों की जुदाई बहुत तकलीफ़ देती थी। सब के सामने ऊँचे स्वर से वे नहीं रोते थे किन्तु देवी के मन्दिर में जब आरती होती और बाजे बजते थे, उस समय वे सूने में जाकर भक्तों के विरह में उच्च स्वर से रोते थे।

उन्हीं दिनों की बात है दक्षिणेश्वर में एक बड़ी भक्तिमती और परम पण्डिता ब्राह्मणी आई। उसका बयान पहिले हो चुका है। परमहंसजी के आचरण और अवस्था देखकर वह बोली, मालूम पड़ता है कि—नित्यानन्द की काया में महाप्रभु चैतन्य देव की ज्योति का आविर्भाव हुआ है।' अर्थात् इनका देह नित्यानन्द के तन के समान है और उसके भीतर श्री गौराङ्गजी (चैतन्यदेव) विराजते हैं। सब शास्त्रों के पण्डित वैष्णव-चरण, बर्दवान के महाराजा के सभा पण्डित विद्धद्वर पद्मलोचन और इन्देश नामक गाँव के निवासी भक्तप्रवर, महाप्राज्ञ, गौरीदत्त पण्डित इत्यादि कई एक प्रसिद्ध सज्जन लोगों ने उस समय आकर स्वामी जी का दर्शन किया

और लक्षण द्वारा उन्हें अवतारी पुरुष मानकर भगवान की तरह उनकी स्तुति की।

हलधारी नाम के एक आदमी परमहंस जी के आत्मीय थे। ये वेदान्त की बातों को अच्छी तरह समझते थे। एक दिन मन्दिर में उपासना करते समय परमहंस जी उनके पास पहुँचकर आत्म स्वरूप में प्रकट हुए। उन्हें पण्डित हलधारी जी ने भी भगवान् समझ कर तुरन्त उनकी स्तुति की और कहा—"अब मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि आप मनुष्य नहीं किन्तु भगवान् हैं।" परमहंसजी ने कहा—"तुम भूल जाओगे। यह बात तुम्हारे मन में न रहेगी।" पण्डित हलधारी ने कहा—"नहीं, मैं कभी नहीं भूलूँगा।" परन्तु परमहंस जी ने अपना रूप जब अन्तर्धान किया, तब हलधारी पण्डित ने उन्हें फिर मनुष्य ही समझा।

कलकत्ते के कालीटोले में चैतन्य सभा के बीच श्री श्रीगौराङ्ग जी का एक आसन है। एक दिन उस सभा में जाकर परमहंस जी उसी आसन पर बैठ गये। कुछ लोगों ने तो उन्हें उस आसन पर बैठे देख भगवान् तुल्य समझ कर उनकी पूजा की, परन्तु कुछ दूसरे लोग मन ही मन उन पर बहुत कुड़कुड़ाए। कालना के प्रसिद्ध साधु बाबा भगवानदास जी उस समय जीवित थे। यह बात सुनकर परमहंस जी पर वे बहुत रंजीदा हुये। परमहंस जी ने जब यह समाचार सुना तब मथुरा बाबू और हृदय को साथ ले नाव करके गङ्गा में घूमते घूमते एक दिन वे कालना चले गये। वहाँ पहुँच कर परमहंस जी हृदय को

साथ ले उन बाबाजी के आश्रम पर पहुँचे। उस समय परमहंस जी को भावावेश हुआ। परमहंसजी में पाये जाने वाले लक्षणों को पहिचान उन्हें महानुभाव समझ कर बाबा जी आश्चर्य में पड़ गये और जब यह सुना कि यही वे हैं जो चैतन्य की गद्दी पर बैठ गये थे तो बाबा जी ने उनसे अपनी ग़लती के लिये क्षमा माँगी।

इन घटनाओं पर ध्यान पूर्वक विचार करने से मालूम पड़ता है कि परमहंस जी के भीतर अवतारी भाव हर अवस्था में बना रहा, परन्तु वे अपना यह भाव लोगों से छिपाते थे। कभी किसी ख़ास अवसर पर किसी ख़ास आदमी के सामने ही वे अपने भाव प्रकट करते और खास अवसरों पर खास लोगों से उसे वे छिपाते थे। इससे सिद्ध होता है कि परमहंस जी एक विशिष्ट पुरुष थे। परमहंस जी के भाञ्जे श्रीयुत हृदयानन्द मुख्योपाध्याय उनके पक्के भक्त और सेवक थे तथा सदा उनके साथ रहा करते थे। हृदय का घर सिंहड़ नाम के गाँव में था। यह गाँव कामारपुकुर से दो कोस पच्छिम में है। परमहंसजी सिंहड़ गाँव की जल-वायु को कामारपुकुर से अच्छी समझकर अक्सर हृदय के ही घर पर रहते थे। उस गाँव से कोस भर दक्षिण दिशा में फुलुई श्यामबाजार नाम का एक गाँव है। वहाँ पर परमहंस जी ने अपना विशेष स्वरूप कई बार दिखलाया था। जितने दिन परमहंस जी वहां ठहरे थे, बड़े धूमधाम से भगवान् की चर्चा और कीर्तन वहाँ होता था। उसी संकीर्तन के बीच परमहंस जी कभी कभी भाव समाधि में डूब जाते थे। कभी वे अत्यन्त उछल कर नाचते और

कभी कभी उनकी सारी शारीरिक हरकत रुक जाती थी। उन दिनों आस-पास चारों ओर यह समाचार बिजली की तरह फैल गया था कि यहाँ एक ऐसा मनुष्य आया है, जो एक बार मर जाता है और फिर जी भी उठता है। धीरे धीरे उन्हें देखने के लिये झुण्ड की झुण्ड भीड़ चारों ओर से उमड़ती चली आती थी। साथ ही चारों दिशाओं से कीर्तन करने वालों की अनगिनती मंडली आसपास के गाँवों से आने लगी। सब का उद्देश्य पागल की तरह नाचने वाले परमहंस जी का दर्शन करने का ही होता था। निदान बहुत से खाने-सोने की चिन्ता छोड़कर संकीर्तन में ही लग गये। किसी को दिन रात की सुधि न रही। जब इस ढङ्ग से एक सप्ताह बीता तब परमहंस जी का ध्यान लोगों के स्वास्थ्य की ओर गया। बस, तब उन्होंने अपना भाव बदल दिया और छिपकर सिंहड़ की ओर चले गये। उनकी इस प्रकार की दैवी-शक्ति देखकर उस समय करीब-करीब सब लोग उन्हें महाप्रभु चैतन्य ही समझ कर उनमें भक्ति करने लगे।

परमहंस जी जिस जिस दिन कल्पतरु बने थे, * अथवा जिस

---

* सन् १८८६ ईसवी की पहिली जनवरी को शाम के समय परमहंसजी ने बहुत से लोगों पर दया करके उनमें स्व-शक्ति का संचार कर दिया था। इसे छोड़कर और दिन भी विशेष कर भौमवार तथा शनिवार को कभी एक, कभी दो, कभी तीन या चार मनुष्यों पर उसी प्रकार से कृपा करते थे और अपने जीवन के अन्त तक वैसी ही कृपा करते रहे।

जिस दिन काली माता बनकर पूजा लेते थे *उस उस दिन परमहंस जी में परमेश्वर का स्पष्ट भाव देखकर सब लोग आश्चर्य करते थे।

एक अध्यापक पण्डित के सम्बन्ध में सुना जाता है कि वह एक दिन उत्तरपाड़ा के किसी धनी आदमी को देखने गया था। वहां उस धनी की बैठक में हरिदास बाबा का रास होता था। यह देख पण्डित मन में दुखी हुआ और बूढ़े ज़मींदार से बोला—'आप आज जीते हैं! कल मर जायंगे; फिर भी आपको बुढ़ाई की उम्र में हरिदास का रास पाठ करना अच्छा लगता है!' बुद्धिमान् ज़मींदार उनका मतलब समझ कर बोला—'हां! शास्त्र की पुस्तकें अधिक नहीं तो सौ बार मैंने पढ़ी होंगी पर उससे क्या हुआ? कुछ लाभ नहीं।' यह बात सुन कर पण्डित ने मन ही मन सोचा कि 'ज़मींदार सच तो कहता है क्योंकि मैंने अब तक शास्त्र पढ़े, पर उससे मुझे भी क्या लाभ हुआ? कुछ भी तो नहीं मिला। आखिर पण्डित के मन में यह बात पैदा हुई कि रानी रासमणि की कालीबाड़ी में जो रामकृष्ण नाम के एक परमहंस हैं, देखें कि उन्हें क्या सिद्धि प्राप्त है।' पण्डित गङ्गा पार दक्षिणेश्वर को चला आया, उस समय परमहंस जी के पास बहुत से लोग बैठे थे और परमहंस जी बिछौने पर सब से ऊँचे आसन पर बैठे थे। नीचे चारों ओर अच्छे अच्छे लोगों को बैठे देख पण्डित की बुद्धि चकरा गई। उसने स्वामी से पूछा—'आप परमहंस हैं? वाह वाह।' इतने में परमहंस जी के बिछौने की ओर पण्डित की दृष्टि पड़ी। वह फिर बोला—"बाबा रे! यह

---

* बङ्गाली सन् १२९२ श्री काली पूजा के दिन प्रातःकाल।

मशहरी है" परमहंस जी ने अँगुली उठा कर बार्निश की हुई अपनी चट्टी की ओर दिखाया। उसे देख पण्डित बोला—'हां! जूती है, वाह वाह।' परमहंसजी फिर अँगुली उठा उठा कर अपनी दूसरी दूसरी चीज़ें दिखाते गये। उन्हें देख देख पण्डित कहता चला—'हां! हां! यह अमुक वस्तु है? यह अमुक पदार्थ है?' अन्त में पण्डित परमहंस के आसन पर बैठकर बोला—"आज मैंने अच्छा परमहंस देखा।" फिर शास्त्र का कोई वाक्य पढ़कर वहाँ जुटे हुए लोगों को सुनाता हुआ बोला—"आप लोग भोले भाले मनुष्य हैं। तभी तो कष्ट करके कलकत्ते से यहां आए हैं। सच पूछिये तो आप लोगों ने धोखा खाया है। परमहंस की हालत ऐसी नहीं होती। परमहंस की स्थिति जैसी होती है, उसका वर्णन इस श्लोक में है सुनो।" ऐसा कहकर उस पण्डित ने अपने पठित श्लोक का अर्थ सब को समझाया। फिर शाम का वक्त करीब देख कर वह बोला—'गया सो गया अब और समय क्यों व्यर्थ बितावें? चलें अपना नित्य-कर्म करें।' मन में यह कहकर पण्डित गङ्गा के तीर सन्ध्या बन्दन करने चला गया। गङ्गा में हाथ मुँह धो और मुखमौन हो आंखें मूंद कर उसने अपने इष्टदेव की मूर्ति का ध्यान लगाया। थोड़ी ही देर ध्यान किया था कि अचानक वह पण्डित उचक पड़ा और दौड़ कर परमहंस के घर में घुसा। घुसते ही देखता क्या है कि परमहंसजी को समाधि लगी है। तब हाथ जोड़कर उनके पास पण्डित खड़ा हो रहा और परमहंसजी को 'आप भगवान् हैं! आप भगवान् हैं!' ऐसा बार बार कह कर स्तुति करने लगा।

केशवबाबू * ने परमहंस जी के अवतारी महापुरुष होने की तो कभी घोषणा नहीं की, परन्तु हमारे मित्र रामचन्द्र दत्त की लिखी परमहंस जी की जीवनी से जान पड़ता है कि लोग परमहंस जी को अवतार मानकर पूजन कर रहे थे। यह बात केशवबाबू को विदित थी। वे स्वामी जी के अवतार भाव के कायल ज़रूर थे।

ब्रह्म समाजी लोगों को निम्न-लिखित बात कहाँ तक मालूम है मैं नहीं जानता; पर मैंने अपने एक बड़े विश्वासी मित्र से यह बात सुनी है कि केशवबाबू ने अपनी बुढ़ौती में परमहंस जी को अवतार मानकर गोपन में उनकी पूजा की थी। एक दिन परमहंस जी केशवबाबू के घर गये। वहाँ पहुँचने पर केशवबाबू ने परमहंस जी से कहा—"आप एक दिन मेरे उपासना गृह में पधारें तो मेरा वह घर पवित्र हो।" परमहंस जी केशवबाबू के उपासना गृह में गये। तब केशवबाबू ने परमहंसजी के पावों पर पुष्पाञ्जलि अर्पण करके कहा—"मेरे पूजा करने की चर्चा आप दूसरे किसी से न कीजियेगा?" इसके कुछ दिन बाद एक दिन भक्ति स्वरूप बिजयकृष्ण गोस्वामी परमहंस जी के पास आये। परमहंस जी ने केशवचन्द्र द्वारा की गई पूजा का हाल विजयकृष्ण से कह दिया और बोले—केशवचन्द्र ने अपना तो बनाया परन्तु पूजन की बात को छिपाकर औरों का बिगाड़ा' मैंने यह समाचार उक्त गोस्वामी जी से ज्योंही सुना त्योंही लोगों में उसे फैला दिया।

---

* केशवचन्द्र सेन ब्रह्म समाज के एक धुरन्धर प्रतिष्ठापक थे।

परमहंस जी कभी कभी स्वयं भी अपने को अवतार पुरुष कह देते थे। इस बात के अनेक प्रमाण भी हैं। परमहंस जी कहते थे—'जैसे कभी कभी राजा लोग अपने राज्य में भेष बदल कर घूमते हैं और उन्हें कोई पहचान नहीं पाता, उसी प्रकार का मैं भी हूँ, अर्थात् भेष बदल कर आया हूँ। इस बार मुझे सब लोग नहीं थोड़े ही लोग पहचान पावेंगे। मेरे भोजन का भाग किसी को मत देना'। दूसरे से कहा था—'मेरा भजन कर' अन्य से कहा था—'अपना इष्ट मन्त्र मुझे वापिस कर'। एक से कहा था—'तुम्हें मन्त्र नहीं लेना होगा।' उनकी इन स्पष्ट बातों से उनका अवतारी पुरुष होना सिद्ध होता है।

परमहंस जी कहते थे—"मेरे ऊपर सब भार छोड़ दो"। परमेश्वर के बिना भला कौन यह कह सकता है?

परमहंस जी ने किसी आदमी से कहा था—'प्रातःकाल मेरा मन जगत् भर को व्याप्त करता है। इस कारण उस समय मेरा स्मरण किया कर।' किसी दूसरे मनुष्य से परमहंस जी ने कहा कि—'धर्म कैसे मिलता है? ईश्वर कैसे मिलता है? इस जिज्ञासा से यहाँ जो आवेगा उसका मनोर्थ पूर्ण होगा'।

परमहंस जी कहते थे—'यहां आना-जाना काफ़ी है। अधिक कुछ नहीं करना होगा?

अपने भक्तों से परमहंस जी ने कहा था—'तुम्हें कुछ भजन साधन नहीं करना पड़ेगा। यदि मुझ पर सोलहो आने पूरा विश्वास रक्खोगे तो सब कुछ सिद्ध हो जायगा।

वे कहते थे कि पहिले सांचा बनाना कठिन है। सांचा बनने पर जितनी चाहो उतनी मूर्ति गढ़ लो। मैं वैसा ही सांचा हूँ। अब तुम्हारे लिये सौ सौ मूर्तियां बन सकती हैं'।

एक दिन परमहंस जी देवी के कमलासन पर बैठे थे। हृदय बाबू ने यह देखकर कहा—'मामा! जिस आसन पर आप बैठे हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो उससे भी उत्तम आसन बनाऊँ।' यह सुन परमहंस जी बोले—'क्यों रे हृदय! तैं इस से उत्तम आसन कैसे बना सकता है। रे बाप! यह कह फिर बोले—'एक आसन बनाने को क्या कहता है? माता कहती हैं कि गांव गांव घर घर मेरा आसन होगा। घर घर मेरी पूजा करने वाले लोग मेरी प्रतिमा पूजेंगे।' ये बातें स्वामी जी अपने मुख से बहुत दिन पहले ही स्पष्ट कह चुके थे।

दिन रात, जिस किसी समय भी वे ईश्वर का नाम लेते थे उसी समय वे समाधि में लीन हो जाते थे। उस समय आँखों की पलकें हिलती न थीं। दोनों आंखों से प्रेम जल विन्दु मुख मण्डल पर ढरते रहते थे। मुँह मुसकुराता हुआ जान पड़ता था। वाह्यज्ञान नहीं रहता था। सारा शरीर निश्चेष्ट हो जाता था। मिट्टी पत्थर के सदृश स्वामी पड़े रहते थे। कान में बार-बार 'ओंकार' का उच्चारण करने से उन्हें धीरे धीरे वाह्यज्ञान आता था।

परमहंस जी ने श्रीमुख से कहा था—'बारह बजे के समय घड़ी की दोनों सुइयां जैसे मिल जाती हैं मेरा मन भी उसी प्रकार सब दिन, सब समय, ब्रह्म में निमग्न होकर तन्मय होना चाहता है,

पर जीव की भलाई करने के विचार से मैं यत्न करके उसे बाहर झुका लाता हूँ। वे कहते थे—जब मैं देखता हूँ कि मेरा मन समाधिस्थ होने वाला है तब उसके पहिले मैं प्रयत्न करके एकाग्र चित्त होकर कहता हूँ कि हुक्क़ा पीऊँगा तब भी समाधि को नहीं रोक सकता हूँ। अन्त में समाधि लगती ही है परन्तु समाधि के पूर्व तम्बाकू पीने की इच्छा ही से समाधि छूट जाती है। फलतः इसी प्रकार की इच्छाएँ करके मैं मनको बाहर झुका रखता हूँ। समाधि में मनकी क्या दशा होती है ? इस प्रश्न के पूछने पर भगवान रामकृष्ण कहते थे—'मछली को जल में छोड़ने से जो सुख उसे होता है, समाधि में प्रकार का परमानन्द मन को प्राप्त उसीहोता है। इस पुस्तक के पढ़ने वाले इसको कुछ समझ सकते हैं कि समाधि साधने वाला समाधि की अवस्था को कितना चाहता है। वैसी उत्तम अवस्था को भी स्वामी जी जीवों की भलाई के विचार से छोड़ देते थे। उनकी इस दया के भाव को विचार कर एक बार तो सोचो कि उन्हें परस्वार्थ कितना प्रिय था। क्या हम लोगों की तरह मनुष्य ऐसा कभी कर सकते हैं ? इस प्रकार की उदारता के लिये हम सब लोग स्वामी जी के ऋणी हैं। हम लोगों के कल्याण के लिये उन्होंने कितनी अनमोल शक्तियों के संग्रह करने में अपना शरीर और मन लगाया था। उन्हीं के चरण कमलों का ध्यान रखते हुये मैंने यह जीवन-चरित्र लिखकर समाप्त किया है।

इति जीवन-चरित

---

* श्रीगणेशाय नमः *

श्रीपरमहंसचरित

भगवान् रामकृष्ण के उपदेश

ईश्वर

ईश्वर का अस्तित्व

[१] रात के समय आसमान में अनगिनती तारे दिखाई देते हैं पर सूर्योदय होने पर वे दिखाई नहीं देते * पर इससे क्या कोई यह कह सकता है कि आकाश में तारे ही नहीं हैं ? इसी प्रकार से अविद्या के रहते यदि ईश्वर का दर्शन नहीं होता तो क्या कोई कह सकता है कि ईश्वर है ही नहीं ?

[२] ईश्वर के नाम और भजन के भाव अनन्त हैं। उनमें से जिस मनुष्य को जो नाम तथा भाव पसन्द है वह उसी से उसको पुकारता तथा ध्यान करता है और उसी से वह ईश्वर को पाता भी है।

---

* अमीय ऋक्षा निहितास उच्चा नक्त ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः।

[ऋग्वेदसंहिता]

ईश्वर का एकत्व

[३] जैसे एक ही जल पदार्थ को भाषा भेद से कोई 'वारि' कोई 'पानी' तथा कोई 'एकुवा'* कहता है, वैसे ही सच्चिदानन्द को भिन्न भिन्न देश में कोई 'अल्लाह' कोई 'हरि' कोई 'गाड' और कोई 'ब्रह्म' कहता है।

[४] जैसे कुम्हार की दुकान में हंड़िया, मटका और दीवा इत्यादि तरह तरह के पात्र हैं, परन्तु सभी के भीतर मिट्टी समान रहती है, ईश्वर भी उसी प्रकार एक हो कर देशादि के भेद से भिन्न रूप में प्रकाशित हुआ है।

ईश्वर की ज्योति बहु-मुखी है

[५] प्रश्न—सब धर्मों में एक ईश्वर ही की चर्चा लिखो है, फिर भिन्न भिन्न धर्म वाले ईश्वर को भिन्न भिन्न दृष्टि से क्यों देखते हैं ?

उत्तर—ईश्वर एक ही है यह सच है, परन्तु भिन्न भिन्न धर्म्म वालों के भाव विभिन्न हैं। जैसे परिवार में मालिक एक ही मनुष्य होता है परन्तु वह किसी का पिता, किसी का भ्राता और किसी का पति भी माना जाता है। ऐसे ही एकमात्र ईश्वर पुरुषों के भाव भेद से भिन्न भिन्न रूप में समझा जाता है।

---

* एकुवा (Acqua) ग्रीक तथा अगंरेज़ी में पानी का नाम है ।

[६] जैसे लोग सीढ़ी, बांस, रस्सी इत्यादि कई चीज़ों की मदद से छत पर चढ़ते हैं, वैसे ही ईश्वर के पास पहुँचने के अनेक मार्ग हैं। प्रत्येक धर्म एक एक मार्ग बतलाता है।

सब मत ईश्वर की प्राप्ति के पन्थ हैं

[७] जैसे कालीघाट की कालीबाड़ी में जाने के अनेक मार्ग हैं, वैसे ही भगवान् के पास जाने के अनेक मार्ग हैं, पर प्रत्येक मार्ग अन्त में एक होकर ईश्वर से मिलाता है।

[८] जैसे एक ही सोने से तरह तरह के गहने बनते हैं, वैसे ही भिन्न भिन्न देश में एक ही ईश्वर भिन्न भिन्न प्रकार से पूजित होता है, फिर भी वह एक ही ईश्वर रहता है।

[९] जिस आदमी को दस आदमी जानते मानते हैं। उसके भीतर भगवान् की विशेष विभूति रहती है।

[१०] संसार के भिन्न भिन्न धर्म एक ही बड़े धर्म के एक एक मार्ग हैं।

[११] जैसे एक ही चीनी से तरह तरह के खिलौने बनते हैं, उसी तरह एक ही ईश्वर भिन्न भिन्न देश में भिन्न भिन्न रूप से पूजित होता है।

साकार और निराकार ईश्वर

[१२] एक बार दो आदमियों में बहुत विवाद हुआ। एक कहता था—उस खजूर के पेड़ पर बड़ा सुन्दर लाल रङ्ग का गिरगिटान है। दूसरा कहता था नहीं तुम भूलते हो, गिरगिटान लाल नहीं किन्तु नीला है। जब उन दोनों में आपस का विवाद बढ़ता ही गया तब अन्त में वे दोनों खजूर के वृक्ष के नीचे गये और वहां के रहने वाले एक आदमी से पहिले ने पूछा—'क्यों महाशय! आप के इस पेड़ पर लाल रङ्ग का गिरगिटान तो नहीं है?' उस मनुष्य ने उत्तर दिया—'हां, है तो।' तब दूसरे ने पूछा—'वह गिरगिटान लाल नहीं किन्तु नीला है।' उसके उत्तर में भी उस मनुष्य ने कहा—'जी हां ऐसा ही है'। क्योंकि उसे विदित था कि गिरगिटान बहुरुपिया होता है। अतः जिसने जो पूछा, उसने वही उत्तर दिया। इसी प्रकार सच्चिदानन्द हरी के भी नाना रूप होते हैं। जो उपासक जिस रूप का ध्यान करता है हरिको उसी रूप में पाता है और जो आदमी भगवान् का बहुरुपिया होना जानता है, वह यह भी जानता है कि सब पदार्थ हरिमय हैं, अर्थात् हरि के ही भिन्न भिन्न रूप हैं। वह यह भी जानता है कि हरि ही साकार है, हरि ही निराकार है और हरि के कितने ऐसे भी रूप हैं जिन्हें हम लोग पूरा नहीं जान सकते।

[१३] वास्तव में अग्नि का कोई रूप नहीं है परन्तु जलते हुए अङ्गारों में उसका एक तरह का रूप जाहिर होता है, अर्थात्

उस समय बिना रूप की अग्नि, रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार परमेश्वर का कोई आकार तो नहीं है पर कभी कभी वह विशेष आकार धारण कर लेता है।

[१४] जब तक घण्टे का शब्द सुनाई पड़ता है, तब तक वह (शब्द) मालूम पड़ता है, बाद में शब्द छिप जाता है। इसी तरह साकार और निराकार ब्रह्म का भेद है।

ब्रह्म निर्णय

[१५] प्रश्न—ब्रह्म का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—ब्रह्म निगु ण, अचल, अटल, सुमेरु के समान है।

[१६] नाम, धाम और श्याम ये तीनों चैतन्य स्वरूप हैं।

[१७] भगवान् सुई की नोक़ में हाथी को बिठा कर हाँक सकता है। तात्पर्य यह है कि :—

"अनहोती प्रभु कर सके,
होनहार मिट जाय।"

[१८] किसी समय श्रीयुत बाबू केशवचन्द्रसेन ने परमहंस देव जी से पूछा कि बिराट रूप में भगवान् की मूर्ति का संकुचित् होना कैसे मुमकिन है? परमहंसदेव जी ने कहा—"सूर्य पृथ्वी से बहुत बड़ा है परन्तु बहुत दूर रहने के कारण हम लोगों को वह एक छोटी थाली के समान दिखाई पड़ता है। भगवान् भी उसी प्रकार संकु-

चित नहीं है, परन्तु दृष्टि से परे होने के कारण हम लोगों को वह संकुचित जान पड़ता है।

[१६] ईश्वर सत्य नित्य होकर लीला करता है। उस अखण्ड सच्चिदानन्द की लीला का पार न पाकर मैं मझधार में उभुक-चुभुक करता और डूबता हूँ, परन्तु मायावी भगवान् को पाऊँगा तब उसकी लीला का भेद भी प्राप्त कर मानों समुद्र का किनारा पा जाऊँगा।

व्यक्त और अव्यक्त ईश्वर

[२०] पानी जम जाने से जैसे बरफ़ बन जाती है, उसी प्रकार साकार मूर्ति को ही सच्चिदानन्द का भाव समझना चाहिये।

[२१] ईश्वर एक है परन्तु भाव के भेद से उसमें भेद जान पड़ता है। एक ही मछली जैसे नाना प्रकार के रस और मसाले देकर भूंजने से नाना प्रकार का स्वाद देती है, उसी प्रकार भगवान् एक है पर साधक लोग उनका अनेक भाव से उपयोग करते हैं।

माया और ब्रह्म

[२२] प्रश्न—माया और ब्रह्म में किस प्रकार का अन्तर है ?

उत्तर—चलते सांप की तरह ब्रह्म की अवस्था माया है और स्थिर सांप की तरह ब्रह्म की अवस्था ब्रह्म है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म की शक्ति में हरकत होना ही माया है और स्थिर होना ही ब्रह्म है।

[२३] जैसे समुद्र में जल कभी स्थिर और कभी चपल होता है, वैसे ही ब्रह्म स्थिर है और माया चपल है।

[२४] प्रश्न—ब्रह्म और उसकी शक्ति के तादात्म्य स्वरूप में किस प्रकार का सम्बन्ध है ?

उत्तर—जैसे अग्नि और उसकी जलाने की शक्ति (ताक़त) में है।

[२५] पञ्च भूत के फन्दे में पड़कर ब्रह्म क्रन्दन कर रहा है ?

[२६] किसी गुरू ने दो अँगुलियां उठा कर शिष्य से कहा–ब्रह्म और माया दो हैं। पर पीछे उसने एक अँगुली झुका दूसरी अँगुली खड़ी रखकर कहा–'माया के हट जाने से ही जगत् ब्रह्ममय जान पड़ता है।

[२७] क्या माया देखने में आ सकती है ? एक बार देवर्षि नारद जी ने भगवान् से प्रार्थना की कि भगवन् ! आप मुझे अपनी अघटित घटनापटीयसी माया का दर्शन कराइये। परमेश्वर ने

कहा—'अच्छा दिखाऊँगा।' इसके बाद भगवान् कहीं घूमने निकले।' थोड़ी दूर जाने पर भगवान् को प्यास लगी। प्यासे होकर नारायण नारद से बोले—'हे नारद! जहाँ से मिले जल लाकर मुझे पिलाओ। नारद तुरन्त जल लाने गये पर आस पास उन्हें वहाँ कहीं जल न मिला। दूर जाने पर एक बहती हुई नदी दिखाई पड़ी। नदी के किनारे पहुंचने पर नारदजी को एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री बैठी दिखाई पड़ी। उसका रूप देखकर उस पर वे मोहित हो गये। उसके पास जाने पर वह नारदजी से चिकनी चुपड़ी बातें करने लगी। थोड़ी ही देर में दोनों परस्पर प्रेम बन्धन में बँध गये। नारदजी ने उसे लेकर वहीं डेरा जमा लिया, उससे कई लड़के हुये, जिनके पालन-पोषण में लगकर वे पूरे गृहस्थ बन बैठे। कुछ दिन बाद वहाँ महामारी फैली। जहां तहां लोग मरने लगे। अतः लड़के-वालों को लेकर उस देश को छोड़ नारदजी ने वहां से भागने का विचार किया, उनकी स्त्री भी उस बात पर राजी हो गई। तब वे दोनों अपने लड़के-लड़कियों को लेकर निकले। मार्ग में एक पुल मिला, उस पुल पर से वे जा रहे थे कि उसी समय पुल टूट गया, स्त्री पुत्र सब नदी में गिर कर मर गये और नारदजी बच गये। कुटुम्ब के शोक में वे रोने लगे। भगवान् भी उसी समय वहां प्रगट हुये और नारद से बोले—'नारद! जल कहां है? तुम इतना रोते क्यों हो? नारद भगवान् को देख ताज्जुब से बोले—"भगवन्! आपको और आपकी माया को प्रणाम करता हूँ।"

[२८] परमहंसजी को भी एक बार परमेश्वर की माया देखने

की इच्छा हुई थी। उन्होंने महामाया माता से माया देखने की प्रार्थना की। माया के देखने की प्रार्थना करते करते एक दिन देखा कि एक छोटे से विन्दु से धीरे धीरे एक स्त्री बन गई और वह तुरन्त सयानी भी हुई। उसी समय उसके गर्भाधान हुआ और गर्भ से ज्योंही बच्चा निकलने लगा त्योंही वह स्त्री उस बच्चे को खाने लगी। वह बार बार बच्चा जनती थी और उसे खा जाती थी। यह देखकर उन्होंने समझ लिया कि बस यही माया है।

ब्रह्म, वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता

[२९] एक मनुष्य ने परमहंस जी से प्रार्थना की कि ब्रह्मदर्शन का वर्णन कीजिये। परमहंस देव जी ने कहा—"ब्रह्मदर्शन का वर्णन मुख से नहीं किया जा सकता।" यदि कोई समुद्र के भीतर ग़ोता लगाकर आवे और दूसरा उससे पूछे—"समुद्र कैसा है?" तो ग़ोता लगाने वाला मनुष्य क्या कह सकता है? वह केवल यही कहेगा कि 'समुद्र पानी है पानी। वह पानी है।' ब्रह्मदर्शन भी उसी प्रकार अकथनीय है।

[३०] केवल शास्त्र भर पढ़ने वाले को ईश्वर का दर्शन करना और जिसने नक़शे में ही काशी देखी है, उसे काशी का ज्ञान कराना दोनों एक ही समान कठिन है।

[३१] वेद, तन्त्र पुराण तथा दूसरी दूसरी धर्म पुस्तकें सब बार बार एक ही बात का समर्थन करती हैं। क्योंकि मनुष्य के मुख से वे बार बार दुहराई गई हैं, परन्तु ब्रह्म की बातें कहीं भी बार बार दुहराई नहीं गई हैं। ऐसा कभी नहीं कह सकते, क्योंकि वह कभी किसी की भी वाणी का विषय नहीं हुआ है।

सगुण और निर्गुण ब्रह्म

[३२] जिस प्रकार मैं कभी नङ्गा रहता हूँ और कभी कपड़े पहिने रहता हूँ, उसी प्रकार ब्रह्म भी कभी सगुण भाव और कभी निर्गुण भाव धारण करता है।

[३३] ईश्वर मानों चीनी का पहाड़ है और भक्त चींटी हैं। छोटी चींटी चीनी के पहाड़ के छोटे छोटे कणों से पेट भरती है और बड़ी चींटी बड़े बड़े कणों से, परन्तु पहाड़ जैसे का तैसा बना रहता है। उसी प्रकार भक्तगण अपने अपने अधिकार के अनुसार भक्तिरस चख कर तृप्त होते हैं पर कोई भी ईश्वर का पूर्णभाव नहीं मिटा सकता है।

[३४] चीनी के पर्व्वत के समान अखण्ड सच्चिदानन्द सदा विराजमान है। साधु लोग चींटियों की तरह यथा शक्ति एक एक कण उसमें से लेकर भरपूर होकर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं।

उनके बीच शुकदेव नारद आदि महा शक्तिमान् महात्मा बड़ी चींटी के समान बड़े कण प्राप्त करके तृप्त हुए हैं। अन्य साधारण भक्त एक एक छोटा कण लेकर तृप्त होते हैं। परन्तु अनादि अनन्त आनन्दमय अचल ईश्वर के सम्पूर्ण आनन्द भाव का पता लगाने वाला कोई भी समर्थ पुरुष नहीं हुआ है।

जीव और ईश्वर

[३५] प्रश्न—जब परमेश्वर अनन्त है और जीव सीमित है तब सीमित जीव अनन्त ईश्वर को कैसे प्राप्त कर सकता है?

उत्तर—नमक की पुतली की तरह जीव, समुद्र के समान परमेश्वर की थाह लगाने जाता है। उसका फल यह होता है कि नमक की पुतली के समान जीव, ईश्वर समुद्र में गल घुल कर उसी में मिल जाता है।

जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध

[३६] प्रश्न—जीवात्मा और परमात्मा का भेद कैसा है?

उत्तर—जैसे बहते हुए पानी में लाठी, या तख़्ता डालने से जल में कुछ रुकावट सी होने के कारण जल दो ओर होकर बहने लगता है,

उसी तरह मायारूपी उपाधि के कारण जीवात्मा से अखण्ड परमात्मा का बिलगाव हो जाता है।

[३७] माया से बँधा हुआ जीव और माया से मुक्त शिव।

[३८] जैसे जल और जल का बुदबुदा वास्तव में दोनों एक ही हैं और बुदबुदा जलही में उत्पन्न होकर जलही में रहता है तथा जलही में मिल जाता है, उसी प्रकार परमात्मा और जीवात्मा दोनों अभिन्न हैं। भेद इतना ही है कि एक व्यापक है और दूसरा व्याप्य है, एक आश्रय है और दूसरा आश्रित है।

[३९] प्रश्न—जीवात्मा और परमात्मा योगावस्था में किस प्रकार से रहते हैं?

उत्तर—जैसे घड़ी की छोटी और बड़ी सुई दोनों बारह बजे सट कर एक हो जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा से मिलने पर एक हो जाता है।

[४०] ईश्वर सब में है पर सब ईश्वर में नहीं है। इसी से ईश्वर भाव से रहित जीव दुःख पाते हैं।

मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध

[४१] भगवान् से जीव का इतना निकट सम्बन्ध है जितना चुम्बक से लोहे का, परन्तु जीवका ईश्वर की ओर आकर्षण क्यों नहीं होता जानते हो कि लोहे में मोर्चा लगा रहता है तो उसे चुम्बक नहीं खीचता। उसी प्रकार जीव में माया रूपी कीचड़ लगा रहता है उसी से ईश्वर उसे अपनी ओर नहीं खीचता। लोहे का मोर्चा यदि जल से रगड़ कर धो दिया जावे तो चुम्बक पत्थर उसे खींच लेता है। उसी प्रकार ईश्वर के निवेदन से माया रूपी कीचड़ जब धुल जाता है तब जीव को भगवान् अपनी ओर खींच लेता है।

[४२] जैसे जहाज़ में 'कम्पास' के चुम्बक की सुई सर्वदा उत्तर की ओर रहती है, उससे दिशा के जानने में भूल नहीं होती। ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की ओर लगा रहे तो उसे किसी बात का खटका नहीं रहता।

[४३] समुद्र के भीतर छिपी पत्थर की चट्टानें जैसे टक्कर लगने पर जहाज़ के कील काटों को तोड़ फोड़ पटरी पटरी अलग कर उसे जल में डुबा देती है, वैसे ही चेतन आत्मा का ज्ञानोदय, अहंकार, ममता तथा स्वार्थपरता को क्षण भर में नाश करके टुकड़े टुकड़े कर डालता है और ईश्वर के प्रेम रूपी सागर में जीव को डुबा देता है।

[४४] जैसे तैल बिना दीपक नहीं जलता, वैसे ही ईश्वर विरहित मनुष्य नहीं जी सकता।

ईश्वर की प्राप्ति की विकलता

[४५] एक बार परमहंस जी बोले—जो भगवान् को चाहता है वह उसे पाता है। न मानों तो बहुत नहीं तीन दिन साधना कर के देखो।

[४६] जिसे चित्तकी एकाग्रता और भक्ति होती है उसे ईश्वर शीघ्र मिल सकता है।

[४७] ईश्वर के अभिमुख हमारा कैसा मन होना चाहिये? जैसे सती का मन पति में तत्पर और कृपण का रुपये में लगा रहता है।

[४८] पुत्र व धन पाने के निमित्त मनुष्य कितना लोलुप है और सब लोचन भर मर रोते हैं, परन्तु ईश्वर को पाने के लिये कितने जन लालायित हैं। पर हां जो उसे चाहता है वह अवश्य पाता है।

[४६] जैसे लड़के पैसा पाने के लिये माता से आग्रह करते हैं, कभी कभी मार भी खाते हैं और रोते हैं। यदि ईश्वर को अत्यन्त अपना जान के उसे देखने के लिये जो छोटे बच्चे के समान सोत्कण्ठ रोते हैं, उन्हें भगवान् अवश्य ही अपना दर्शन देते हैं।

[५०] इस जन्म में ईश्वर को प्राप्त करूंगा, तीन ही दिन में प्राप्त करूंगा, एक बार नाम लेते ही ईश्वर को पाऊंगा, ऐसी उत्कट भक्ति परमहंस जी को भावती थी। धीमी भक्ति उन्हें नहीं सुहाती थी।

[५१] क्या दान करने से ईश्वर मिलता है? तन मन और धन ये तीनों भगवदर्पण किये बिना भगवान् नहीं मिल सकता है। जैसे जल में डूबने से मन उभुक-चुभुक करता है, वैसे ही भगवान् के लिये जब प्राण व्याकुल होगा तब भगवान् मिलेगा।

ईश्वरानुसन्धान

[५२] गङ्गा के किनारे कुछ स्त्रियां नहा रही थीं, पास ही कुछ पुरुष भी वहां घूम रहे थे। नहाने वाली स्त्रियों में से एक का स्वामी भी उन पुरुषों के बीच टहल रहा था। एक स्त्री ने एक पुरुष की ओर हाथ बढ़ा के उस स्त्री से कहा—'क्या तेरा स्वामी यह है'? उसने उत्तर दिया नहीं। इसी प्रकार पूर्व स्त्री ने दूसरे पुरुष की ओर हाथ उठाकर पूछा, क्या तेरा स्वामी वह है? फिर उसने उत्तर दिया नहीं। यों पूछते पूछते अन्त में जब केवल एक ही पुरुष शेष रह गया, तब उस पूछने वाली स्त्री ने बल देकर कहा कि यह पुरुष निश्चय तेरा पति है और उस स्त्री ने उसकी उस बात को सुन कर (स्वीकार का चिन्ह) लज्जा से अपनी गर्दन नीचे झुका

ली। इसी प्रकार इस देह में जिज्ञासा (तत्त्व विवेचन) करना चाहिए कि क्या चमड़ा, लोहू व हड्डी आत्मा है? भीतर से उत्तर मिलेगा नहीं नहीं। इसी प्रकार यह भी पूछना चाहिए कि क्या मन व बुद्धि आत्मा है? फिर भीतर से उत्तर आवेगा नहीं नहीं। निदान जहां पहुँच कर यह "नहीं" शब्द समाप्त हो जाय, जानों वही आत्मा है।

[५३] जो वस्तु जैसे यत्न से मिलती है, उसके पाने के निमित्त वैसा यत्न करो, क्योंकि यदि वैसा न करोगे तो वह वस्तु क्योंकर प्राप्त हो सकेगी? देखो दूध में मक्खन है, पर मक्खन मक्खन बकने से मक्खन नहीं मिलता। हां यदि मक्खन निकालना चाहो तो दूध का दही जमाओ और उसे मथो, तब मक्खन निकलेगा। ऐसे ही यदि ईश्वर को पाना चाहो तो जिस साधन से ईश्वर मिलता है उस साधन को करो, ईश्वर मिलेगा। ईश्वर ईश्वर चिल्लाने से क्या इष्ट सिद्ध होता है?

[५४] भगवान् में तन्मय होकर निःशेष लयलीन हो जाओ अर्थात् ब्रह्मसागर में मिल के एक हो जाओ।

[५५] कीजिये ध्यान किनारे, क्या बन में क्या मन में?

[५६] ईश्वर को क्या ऊँचे स्वर से पुकारना होता है? वह तो चींटी का भी शब्द सुनता है। तुम्हारी इच्छा उदय होते ही उसे वह जान जाता है।

[५७] जो मुसलमान अल्लाह अल्लाह चिल्लाता है, उसे जानो

कि उसने ईश्वर को नहीं पाया, क्योंकि जो ईश्वर को पाता है वह चुप रहता है।

[५८] प्रश्न—ईश्वर कहां है ? वह कैसे मिलता है ?

उत्तर—जैसे समुद्र में रत्न है, उसके पाने का उपाय करना चाहिये। वैसे ही ईश्वर भी संसार में है, उसके पाने की कोशिश करनी चाहिये।

[५९] समुद्र में एक बार डुबकी लगाने से अगर रत्न न पाओ तो समुद्र को रत्नहीन मत कहो। बार बार डुबकी लगाते रहने से रत्न अवश्य मिलेगा। थोड़ी साधना करके ईश्वर को न पाने पर मत कहो कि ईश्वर नहीं मिलता और न निराश ही होवे। धीरज धर कर साधना करते चलो। जब फल मिलने का समय आवेगा अवश्य ईश्वर की कृपा होगी।

[६०] प्रश्न—ईश्वर कैसे मिलता है ?

उत्तर—जैसे लाल मूँड़ की रोहू मछली पकड़ने के लिये बंसी फेंक कर धीरज से बैठना होता है, वैसे ही धीरज धर कर साधना करना चाहिये।

ईश्वर का साक्षात्कार कैसे हो

[६१] प्रश्न—यदि ईश्वर सभी जगह मौजूद है तो हम लोगों को वह दिखलाई क्यों नहीं पड़ता ?

उत्तर—काई से ढँकी हुई तलैया के किनारे खड़े होकर यदि कोई

कहे कि इस तलैया में पानी नहीं है, तो क्या उसकी बात सही समझी जायगी? हरगिज़ नहीं। यदि जल देखना चाहो तो काई हटा देनी होगी। ऐसे ही माया का परदा पड़ जाने से ईश्वर नहीं दिखाई देता है। यदि ईश्वर को देखना हो तो माया के पर्दे को दूर करना चाहिये।

[६२] जैसे बादल से सूर्य ढँक जाता है, वैसे ही माया से ईश्वर ढँका है। फिर मेघ के हटने पर जैसे सूर्य दिखाई देता है, वैसे ही माया के हटने पर ईश्वर दिखलाई पड़ता है।

[६३] पोखरे के मैले जल के भीतर मछली जैसे खेलती है, ईश्वर भी उसी प्रकार प्रत्येक जीव के अन्तःकरण में क्रीड़ा कर रहा है।

[६४] वासना का जरा सा अंश भी रहने से ईश्वर नहीं दिखाई देता। इसीलिये छोटी मोटी वासनाओं को चाहे पूरी कर लो, पर बड़ी बड़ी वासनाओं को विचार करके अभी से दूर कर दो।

[६५] जैसे सुई के छेद में सूत का रुँआँ अँटका रहे तो उसमें तागा नहीं घुसता, वैसे ही मन में विषय वासना बनी रहने से भगवान् उसमें नहीं आता।

[६६] सुई में डोरा डालना हो तो डोरे का मुंह पतला करो। मन को ईश्वर में लगाना हो तो सब कुछ छोड़ कर दीन हीन हो जाओ।

[६७] राजा के पास पहुँचने के लिये पहरेदारों की बड़ी खुशा-

मद करनी पड़ती है, परन्तु ईश्वर के पास पहुँचने के बहुत से उपाय हैं। जैसे भाँति भाँति के भजन, कीर्तन, सत्संग इत्यादि।

[६८] भाँग भाँग चिल्लाने से ही भाँग का नशा कदापि नहीं चढ़ता। भांग पीस कर पीने ही से नशा होता है। ऐसे ही सिर्फ़ ईश्वर ईश्वर कह कर चिल्लाने से ही ईश्वर नहीं मिलता। नियम से साधना करने ही से परम आनन्द मिलता है।

[६९] स्त्री भक्ति से रो रो कर बार बार प्रणाम करे तब भी उनका एकाएक विश्वास नहीं करना चाहिये।

[७०] अच्छे बुरे का ज्ञान होने तथा स्त्री, सोना आदि भोग की चीज़ों से मन को हटाने को ही वैराग्य कहते हैं।

[७१] स्त्री और सोना न छोड़ने वाले को भगवान का दर्शन कठिन है। लाज, घिन और डर से ईश्वर नहीं मिल सकता।

ईश्वर के नाम

[७२] कलिकाल में ईश्वर का नाम ही मुक्ति का एक मात्र साधन है।

[७३] ईश्वर के देखने का यदि अरमान हो तो नाम में विश्वास और पाप पुण्य का विचार रख कर चलना उचित है।

[७४] अमृत के तालाब में चाहे जैसे गिर सको गिरो, अमर हो जाओगे। वैसे ही भगवान का नाम चाहे जैसे हो लो, उसका फल अवश्य मिलेगा।

[७५] दीपक का काम है सब को प्रकाश देना। चाहे कोई उससे भात पकावे, चाहे उसके प्रकाश में जालसाज़ी करे, चाहे श्रीमद्भागवत पढ़े; इसमें दीपक का गुण या दोष नहीं है। ऐसे ही भगवान का नाम लेकर कोई मुक्ति चाहता है और कोई चोरी करना चाहता है, इसमें भगवान् का क्या दोष है?

[७६] जान में अनजान में, भूल-चूक से, जिस प्रकार से, भगवान का नाम लोगे, फल अवश्य मिलेगा। जैसे कोई देह में तेल लगा कर नहाये तो उसका नहाना तो नहाना है ही, साथ ही जिसे बरबस जल में ढकेल दो, उसका भींगना भी स्नान ही कहा जाता है और जिस सोते हुये के देह पर पानी डालो उसका भींगना भी नहाना ही कहा जाता है। मनुष्य का दुर्लभ शरीर पाकर जो भगवान् को प्राप्त नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है। जहाँ दस आदमी दण्डवत् करते हैं वहां तुम लोग भी दण्डवत् करो, उससे तुम्हारा भी भला होगा।

किसने ईश्वर को देखा ?

[७७] रावण से किसी ने कहा—"तैं तो कामरूपी है अर्थात् सब रूप धर सकता है। राम का रूप धर कर सीता के पास क्यों नहीं जाता?" रावण बोला—'जब राम के रूप का स्मरण करता हूँ तब ब्रह्मपद भी तुच्छ जान पड़ता है, फिर परस्त्री रति क्या चीज़ है?

[७८] प्याज़ का छिलका अलग करते करते अन्त में प्याज़ का कुछ हिस्सा नहीं रह जाता। ऐसे ही "न इति न इति" कह कर संसार को ब्रह्म से अलग करने से ब्रह्म को छोड़ और कुछ बाक़ी नहीं रह जाता। तात्पर्य यह है कि यह जगत कुछ नहीं है केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है।

[७९] कली ही मञ्जरी है और मञ्जरी ही कली है। ब्रह्म ही जगत् और जगत् ही ब्रह्म है।

[८०] जीवन्मुक्त (सिद्ध आदमी या योगी) के मन में भी एक प्रकार की माया बनी रहती है। उसी के कारण वह जीता रहता है। पूर्ण ब्रह्मज्ञान होने पर मनुष्य एक्कीस दिन से अधिक नहीं जी सकता।

[८१] सत्यज्ञानी मनुष्य वही है जो परमेश्वर को देख चुका है। वह लड़के की तरह हो जाता है। यद्यपि लड़के में कुछ मामूली अहंकार दिखाई पड़ता है परन्तु वह अहंकार का आभासमात्र है, स्वार्थपरता नहीं है। लड़कों का अहंकार सयाने मनुष्यों के अहंकार की तरह नहीं होता है।

[८२] प्रश्न—क्या सब मनुष्य भगवान् का दर्शन पायेंगे?

उत्तर—हां! जैसे कोई मनुष्य हमेशा भूखा नहीं रहने पाता, कोई नौ बजे, कोई दो बजे और कोई शाम को भोजन पाता है, वैसे ही किसी न किसी जन्म में कभी न कभी सब लोग ईश्वर का दर्शन ज़रूर पावेंगे।

ईश्वर अपने आप ही व्यक्त होता है

[८३] पहरुए के पास जो चोरों के पकड़ने की "चोर लालटेन" होती है, उसकी विशेषता यह है कि ऊपर उठाकर सामने के आदमी को तो वह देख सकता है परन्तु वह स्वयं अंधेरे के कारण दिखलाई नहीं देता। हाँ यदि पहरुआ स्वयं लालटेन के मुंह को घुमाकर अपनी ओर करे तो लोग उसे भी देख सकते हैं। भगवान् भी इसी प्रकार से सब को देखता है और उसे कोई नहीं देखता, परन्तु यदि दया करके वह अपने को दिखावे तो लोग उसे भी देख लेते हैं।

[८४] प्रश्न—हम लोग आनन्दमयी माता को क्यों नहीं देख पाते ?

उत्तर—वह देवी बड़े कुल की स्त्री की तरह है। जैसे भले घर की स्त्री चिक के भीतर सब काम करती हुई सब को देखती है पर स्वयं वह किसी को नहीं दिखाई देती, वैसे ही देवी भी सब को देखती है पर उसे कोई नहीं देखता। माया के परदे को हटाकर केवल देवी के भक्त उसके पास जाकर उसे देख सकते हैं।

[८५] जिस माता के कई बेटे रहते हैं वह किसी को काठ की चटनी (खिलौना), किसी को पुतली और किसी को मिठाई देकर लुभा (बहला) कर अपने काम को करती है। परन्तु जो बालक खिलौना इत्यादि सब फेंक कर माँ ! माँ ! करके रोता है, उसे माँ गोद में लेकर चुमकारती हुई चुप कराती है। हे प्राणियो ! तुम भी

अन्य पदार्थों में भूले हो। यह सब फेंक कर यदि तुम रो रो कर ईश्वर के लिये तलफोगे तो वह तुम्हें अपनी गोद में ज़रूर लेगा।

ईश्वर भक्ति से दी गई छोटी से छोटी भेंट को भी ग्रहण करता है

[८६] ज़मींदार चाहे कितना ही धनी हो, पर प्रजा जो कुछ मामूली चीज़ भी उसकी नज़र करती है, वह प्रेम से उसे ले लेता है। इसी प्रकार ईश्वर महान् होकर भी मनुष्यों की भेंट आदर के साथ ग्रहण करता है।

[८७] चाहे मछली कितनी ही दूर रहे पर चारा देख कर झट पास चली ही आती है। भगवान् भी उसी प्रकार से विश्वासी भक्त के मन में शीघ्र आकर उपस्थित हो जाता है।

मनुष्य के हृदय में ईश्वर का आगमन

[८८] मन में भगवान् के आगमन की पहिचान कुछ ऐसी ही है, जैसे सूर्य निकलने के पहिले आकाश में कुछ लालिमा छा जाने से उसके निकलने का आभास मिल जाता है।

[८६] जैसे राजा जब अपने किसी ख़ास नौकर के घर पर जाने को होता है तो पहिले से अपने महल की साज-सामग्री और

अपने बैठने के उपयुक्त बिछौने तथा भोजन इत्यादि भेज देता है। वैसे ही भगवान् अपने आगमन के पहिले अपनी सब वस्तु इकट्ठी करके भक्त के मन में पहिले से भेज देता है। अर्थात् साधक के हृदय में पहिले प्रेम, भक्ति, विश्वास और उत्कण्ठा को उत्पन्न कर देता है।

ईश्वर दर्शन

[६०] प्रश्न—जब ईश्वर दिखलाई पड़ जाता है तब भक्तों के हृदय की कैसी दशा हो जाती है?

उत्तर—जब ईश्वर की ज्योति झलकती है, तब उसकी झाँकी पाने वाले का हृदय स्थिर हो जाता है। हृदय रूपी नदी जब तक कामना रूपी हवा से हलकोरे लेती रहती है तब तक ईश्वर नहीं दिखाई देता।

[६१] जैसे केवल पति की सेवा में सदा लगी रहने से पतिव्रता स्त्री को पातिव्रत धर्म मिलता है, ऐसे ही एकमात्र ईश्वर में अटल विश्वास रखने से ईश्वर मिलता है।

[६२] ईश्वर का दर्शन तब प्राप्त होता है जब मनुष्य इन तीनों अवस्थाओं को पहुँच जाता है :—

(१) जो कुछ है सब हमीं हैं (२) जो कुछ है सब तू ही है (३) तू प्रभु है मैं तेरा दास हूँ।

जिसने ईश्वर को देखा है वह उपद्रव नहीं करता

[९३] लोहे की तलवार पारस पत्थर से छू जाने पर यदि सोने की तलवार हो जाय, तो अपनी पहिले की शक्ल रखते हुये भी वह किसी का गला काटने लायक नहीं रह जाती। ऐसे ही ईश्वर के शरणागत होने पर मनुष्य का आकार तो नहीं बदलता पर वह हत्यारा नहीं रह जाता।

[९४] बाज़ार से कुछ दूर चले जाने पर उसके भीतर का गलगंज सुनाई पड़ता है। उसके भीतर घुसे हुये को कोलाहल नहीं, किन्तु लोगों की बोलचाल भर स्पष्ट सुनने में आती है। ऐसे ही ईश्वर से दूर हटे रहने पर मनुष्य तर्क-वितर्क और युक्तियों के फन्दों में फंसा रह कर वाद विवाद करता है, पर ईश्वर के समीप पहुँचने पर वह किसी टण्टे बखेड़े में नहीं पड़ता, क्योंकि उसे वहां सब बातें साफ़ साफ़ दिखाई पड़ती हैं।

जिसे ईश्वर का ज्ञान हो जाता है उसे कोई संसार के बन्धन में बाँधकर नहीं रख सकता

[९५] जैसे आँख मिचौनी के खेल में खूंटा चूमने वाला फिर चोर नहीं माना जाता, वैसे ही ईश्वर तक पहुँचने पर जीव फिर संसार के बन्धन में नहीं बँधता और जैसे खूंटा छू लेने वाला अपनी तबीयत के अनुसार चाहे जहां जाय चोर नहीं कहा जाता, तैसे

ही ईश्वर की शरण में स्थान पा जाने पर जीव को संसार में किसी का भय नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि जो ईश्वर को पा लेते हैं उन्हें फिर संसार में किसी हालत में भी कुछ जोखिम नहीं रहता, क्योंकि उन्हें कोई किसी भांति से बांध नहीं सकता।

[६६] दूध में जल डालने से दूध और जल दोनों मिल कर एक हो जाते हैं, परन्तु दूध का मक्खन हो जाने पर वह जल में नहीं घुलता। इसी प्रकार ईश्वर के भाव प्राप्त हो जाने पर हज़ारों संसारी आदमियों के बीच में रहने पर भी उसे दुनियाबी फंदे नहीं लग सकते।

[६७] लोहा एक बार पारस पत्थर के स्पर्श से यदि सोना हो जाय, तब चाहे उसे पृथ्वी में गाड़ो, चाहे कूड़े में फेंको, पर वह सोने का सोना ही बना रहता है। ऐसे ही ईश्वर के शरणागत हो कर चाहे बन में रहें, चाहे घर में, पर उनके मन में दाग़ नहीं लगता।

[६८] जो ईश्वर को जानता है वह संसारी सुखों की ओर उदासीन रहता है। जिसने ओला और मिश्री चक्खी है वह क्या चोटा (ख़राब गुड़) नहीं खाना चाहेगा। जो सुथरे तिमहले पर सोया करता है वह मैले भूतल पर सोना नहीं चाहता। ऐसे ही जो ब्रह्मानन्द का आनन्द जानता है वह विषय सुख में मतवाला नहीं होता।

[६६] जो राजा का मित्र होता है वह साधारण राज कर्मचारियों के साथ दोस्ती करने की चिन्ता नहीं करता। ऐसे ही

जिसे भगवान् प्राप्त हैं उसका मन फिर तुच्छ संसारी वस्तु पर नहीं दौड़ता।

[१००] गृहस्थिनी जैसे सदा तरह तरह के काम धन्धे में फँसी रहती है, पर बच्चा पैदा होते वक्त उसे मजबूरन सब काम-काज़ छोड़ देने पड़ते हैं और बाद में भी उसे दूसरे काम अच्छे नहीं लगते। क्योंकि वह रात-दिन केवल अपने बच्चे को पालती पोषती और उसका मुँह चूमती हुई सुखी रहती है। इसी तरह जीव भी अज्ञान के कारण तरह तरह के काम किया करता है, किन्तु ईश्वर का दर्शन पाने पर फिर उसे और काम अच्छे नहीं लगते, बल्कि वह ईश्वरानुकूल काम और सेवा को छोड़ अन्य कामों में ज़रा भी चैन नहीं पाता। यहां तक कि क्षण भर भी वह ईश्वर सम्बन्धी कामों से अलग होना नहीं चाहता है।

[१०१] जो मिश्री का रस चखता है उसे चोटे (ख़राब गुड़) का शर्बत अच्छा नहीं लगता।

ईश्वर विषयक ज्ञान और ईश्वर की भक्ति

[१०२] विशुद्ध ज्ञान और शुद्ध भक्ति दोनों एक ही चीज़ें हैं।

[१०३] ज्ञान, पुरुष (नर) है और भक्ति, प्रकृति (नारी) है। ईश्वर के बाहरी घर तक ज्ञान का प्रवेश हो सकता है पर उसके अन्तःपुर में भक्ति महारानी को छोड़ अन्य कोई नहीं जा सकता।

[१०४] शक्ति के न रहने से अकेले शिव से कुछ कार्य नहीं

होता। जैसे केवल मिट्टी से कुम्हार कुछ गढ़ नहीं सकता, किन्तु पानी मिलते ही अपनी मिट्टी की सृष्टि वह कर लेता है।

मूर्ति-पूजन

[१०५] जैसे रेशम का बना शरीफा और मिट्टी का बना हाथी देखकर सच्चे शरीफा और हाथी का ज्ञान होता है, वैसे ही ईश्वर की प्रतिमा देखकर ईश्वर की भावना होती है।

[१०६] किसी समय "स्वामीजी ने केशवचन्द्रसेन से कहाः—मूर्ति देखकर तुम्हें मिट्टी और भूसे की याद क्यों आती है? सच्चिदानन्दमयी माता का ध्यान क्यों नहीं आता?"

[१०७] देव-देवियों की मूर्ति देखकर जो लोग मन में देवताओं के उपयुक्त भाव ले आते हैं उन्हीं को दिव्य दर्शन हो सकता है, परन्तु मूर्ति को देख कर जो लोग मिट्टी, भूसा या पत्थर का भाव अपने मनमें लाते हैं, उन्हें मूर्त्तिपूजा से कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

ईश्वर सब में है

[१०८] नारायण तो सब जल में है, पर सब जल पिया नहीं जाता। नारायण तो सर्वत्र है, पर हम सर्वत्र जाते नहीं। जैसे एक जल से पाँव धोते हैं, एक से नहाते हैं, एक को पीते ,हैं और एक को बिलकुल छूते भी नहीं, ऐसे ही अनेक प्रकार के स्थान भी हैं।

किसी स्थान में हम जा सकते हैं, किसी के भीतर घुस सकते हैं और किसी को दूर ही से देखकर चल देना होता है।

[१०९] सत्य है कि बाघ में भी ईश्वर है, पर बाघ के सामने नहीं जाया जाता। ऐसे ही ईश्वर खोटों में भी है, पर खोटों का सङ्ग नहीं किया जाता।

[११०] गुरूजी बोले—'जो कुछ है सब ईश्वर है।' शिष्य ने समझा सब ईश्वर ही है। दैवात् रास्ते में एक हाथी आता था। उस पर का महावत कहता आता था हटो हटो। शिष्य ने सोचा क्यों हटें? हम भी ईश्वर, हाथी भी ईश्वर; ईश्वर से ईश्वर को डर कैसा? निदान वह हटा नहीं। हाथी ने उसे सूंड़ से उठाकर दूर फेंक दिया और उसे बड़ी चोट लगी। उसने सब वृत्तान्त गुरु से कह सुनाया। गुरु बोले—"हां! तुम भी ईश्वर हो, हाथी भी ईश्वर है, परन्तु हाथी के ऊपर बैठा नारायण रूप महावत तो तुम्हें हटने के लिये कहता था न? तुम उसके कहने से क्यों नहीं हट गये?

[१११] ईश्वर हम सब लोगों को भोजन देता है, यह क्या उसकी कम कृपा है? पर इतना ही नहीं, जैसे पिता अपने पुत्र को भोजन देता है और उसे कुमार्ग से बचाता है। ऐसे ही ईश्वर हमें लोभादि से बचाता है और उसी से उसको हम सब परम कृपालु कहते हैं।

मनुष्य की मुक्ति

[११२] कीचड़ लिपटाना लड़के का स्वाभाविक गुण है, परन्तु माता उस कीचड़ को धो डालती है। इसी प्रकार मनुष्य कितना ही पाप करे, परन्तु ईश्वर अवश्य उसके लिये उद्धार का रास्ता निकाल देता है।

[११३] अंधेरी कोठरी में चाहे हज़ारों वर्ष पीछे दिया रखा जावे उसमें प्रकाश फैलते देर न होगी, उसी प्रकार ईश्वर की दया दृष्टि रूपी दीपक आते ही हज़ारों जन्म के पाप दूर हो जाते हैं।

मनुष्य के भीतर ही ईश्वर है

[११४] रामकृष्ण परमहंसजी अक्सर अपने हृदय पर उङ्गली रख कर कहा करते थे—"जिसको यहाँ है, उसको वहाँ भी है"। अर्थात् जो मनुष्य अपने भीतर ईश्वर को नहीं पाता, वह अपने बाहर भी उसे नहीं पा सकता और जो पुरुष ईश्वर को अपने हृदय रूपी मन्दिर में पाता है, वह इस दुनिया रूपी मन्दिर में भी उसे ज़रूर पा सकता है।"

[११५] परमहंसजी ने किसी से कहा था—"हम जितना करने को कहते हैं उतना तुम लोगों से नहीं हो सकेगा। यदि हमारी बात के सोलह आने में से एक आना भी करो तो बहुत है।"

[११६] माता! मेरे सब अहङ्कार को नाश कर, मैं ब्राह्मण हूँ

और दूसरा चाण्डाल है। मेरे इस अज्ञान को दूर कर क्योंकि वे भी तो तेरे ही भेद हैं, जो भिन्न भिन्न देह से आविर्भूत हुए हैं।

मुक्तिदाता, महात्मा और गुरु ईश्वर के प्रेरित होते हैं

[११७] अवतार ईश्वर का कर्मचारी है। जैसे ज़मीदार के अधिकार के भीतर जो प्रदेश हैं, उनमें कोई गड़बड़ी होने से वह अपने कारिन्दे को प्रबन्ध के लिये वहाँ भेजता है। वैसे ही संसार में कहीं धर्मलोप होने लगता है तो वहां अवतार भेजा जाता है।

[११८] एक ही अवतार डुबकी मारकर यहाँ कृष्ण होकर आया और वही अन्यत्र यीशु होकर प्रकट हुआ।

[११९] प्रश्न—निर्गुण ब्रह्म और रामकृष्ण आदि के रूप में कैसा अन्तर है?

उत्तर—जैसे समुद्र और उसके तरङ्ग में अन्तर है।

[१२०] जब श्रीरामचन्द्र जी ने अवतार लिया था, उस समय केवल सप्तर्षि ही उन्हें पहिचान सके थे। वैसे ही जब भगवान् अवतार लेते हैं तब सबका काम नहीं है कि उन्हें पहचान सकें।

[१२१] कोई नहीं जानता कि ईश्वर जब अवतार लेता है तब उसे अपनी महिमा को कितना छिपाकर रखना पड़ता है।

मुक्तिदाताओं की मुक्ति देने की शक्ति

[१२२] परिश्रम करके कुआँ खोदने से तो उससे पानी मिलता ही है, परन्तु जब बरसात होती है तो चारों ओर अपने ही आप पानी जमा हो जाता है। ऐसे ही और समयों में बहुत क्लेश के साथ साधन भजन करने से लाभ होता है, परन्तु जब अवतार आता है तब उससे ईश्वर का दर्शन अपने आप मिलने लगता है।

[१२३] अवतार का आना मानों ज़ल का बरसना है। पानी बरसने पर मकान के आस पास खूब पानी भरा रहता है। जल गिरने से जैसे मकान के आस पास पानी आपही आप आता है, वैसे ही अवतार होने से मुक्ति सहज में प्राप्त होती है।

[१२४] रेल का एञ्जिन जैसे अनायास भारी बोझों से लदी गाड़ियां खींच ले जाता है, वैसे ही अवतारी पुरुष पापी मनुष्यों को ईश्वर के पास पहुँचा देता है।

मुक्तिदाता अनेक हैं

[१२५] ज्योतिःस्वरूप भगवान रूपी वृक्ष के फल के गुच्छों के राम और कृष्ण एक एक फल हैं। उनमें से एक एक धरती पर आकर न जाने कितनी लीला कर जाते हैं।

[१२६] श्रीकृष्ण, श्रीराधा और अर्जुनादि की कथा इतिहास के किसी किसी अंश में सच नहीं है, वह केवल रूपक मात्र है।

शास्त्रों में केवल आध्यात्मिक भाव से वे कथाएँ कही गई हैं, उनके एक एक अक्षर के अर्थ का शास्त्रकार समर्थन नहीं करते।

[१२७] जैसे हुमा नाम की चिड़िया सूने में अंडे देती है और अन्तरिक्ष ही में उसका अण्डा फूटता है। उससे उसके बच्चे निकल कर अन्तरिक्ष में उड़ जाते हैं और वे पृथ्वी पर कभी नहीं आते। ऐसे ही परमसिद्ध लोगों की हालत है।

[१२८] जैसे हाथी के दांत खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं, वैसे ही अवतारों के भी दो भाव होते हैं। साधारण मनुष्य के लिये साधारण भाव होता है, पर उनकी असली बातें कर्म काण्ड से परे होती हैं।

[१२९] प्रश्न—ईशू मसीह के विरोधियों ने उसके शरीर में कीलें ठोंकीं, पर उसने उनकी मङ्गल प्रार्थना की ?

उत्तर—कच्चे नारियल के फल में कांटा गोदो तो वह गूदे तक धंस जाता है, पर पक्के नारियल के फल में ऊपरी छिलके से अन्दर की गिरी अलग हुई रहती है। ईशू भी पक्के नारियल के फल के समान था। उसकी आत्मा देह से अलग थी। इससे उसमें कीलें नहीं गड़ीं और न उसको कष्ट हुआ। यही कारण है कि वह प्रेम से शत्रुओं के लिये भी मङ्गल प्रार्थना करता रहा।

अवतार और सिद्ध पुरुष

[१३०] परमहंस देव कहा करते थे कि मनुष्यों की प्रकृति दो तरह की होती है। पहिली तरह की प्रकृति का उदाहरण यह है कि किसी गुरु ने शिष्य को उपदेश देकर कहा—"बेटे! यह अमूल्य रत्न है इसका भेद किसी से प्रकट मत करना।" यह सुन कर वह शिष्य चुप रहा। दूसरे स्वभाव का दूसरा शिष्य भी वहीं था। वह गुरु की उस बात को सुन कर और कुछ न बोला, किन्तु घर के छज्जे के ऊपर चढ़ कर ऊँचे स्वर से चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा—"जिसको अमूल्य रत्न लेना हो यहाँ आये।"

[१३१] जैसे बड़ी तेज़ी से जाने वाला एक धूम्रांकश जहाज़ शीघ्रता से छोटी छोटी नौकाओं को खींचता चला जाता है, वैसे ही अवतारी पुरुष हज़ारों संसारी मनुष्यों को अपने साथ स्वर्ग ले जाता है।

[१३२] जब बाढ़ आती है, तब नदी नाले सब भर जाते हैं और आस पास की सब भूमि जलमयी हो जाती है, पर वर्षा का सब जल बँधी नहर इत्यादि में होकर ही बहता है। ऐसे ही जब अवतार होता है तब उसकी दया से तर तो सब जाते हैं। पर ईश्वर को सिद्ध लोग ही अपनी कठिन तपस्या के बल से पाते हैं।

[१३३] सिद्ध पुरुष मानों पटा हुआ कुआँ है जिसे प्रयत्न कर के खोलना पड़ता है। पर अवतार जहाँ कुआं नहीं है वहां कुआँ खोदने की तरह है।

[१३४] बड़ा भारी शहतीर जो पानी पर उतराता है, उस पर

यदि बहुत से मनुष्य बैठ जायं तो भी वह नहीं डूबता, पर पानी में यदि कोई छोटा मोटा डण्डा छोड़ दे तो वह कौए के बोझ से भी डूब जायगा। इसी तरह जब अवतार होता है तब उसके सहारे अनेक मनुष्य तर जाते हैं, पर सिद्धपुरुष अपनी बड़ी मेहनत और कष्ट से स्वयं पार पाता है।

[१३५] सिद्धपुरुष की प्रकृति ऐसी होती है जैसे भाँटे पक कर कोमल हो जाते हैं।

सिद्धपुरुष कितने प्रकार के होते हैं

[१३६] संसार में सिद्धपुरुष चार प्रकार के हैं :—

(१) स्वप्नसिद्ध (२) मन्त्रसिद्ध (३) आकस्मिकसिद्ध और (४) नित्यसिद्ध*। जैसे अचानक कोई गरीब ज़मीन में गड़ा या किसी

---

* पांचवें प्रकार के एक कृपासिद्ध भी होते हैं। जैसे राजा का कृपापात्र होकर ग़रीब भी अमीर हो जाता है, वैसे ही ईश्वर की दया से कोई कोई लोग कृपासिद्ध हो जाते हैं।

(१) जो स्वप्नदर्शन में अनुभव प्राप्त कर सिद्ध होते हैं उन्हें स्वप्नसिद्ध कहते हैं।

(२) जो किसी मन्त्र विशेष को सिद्ध करके सिद्ध होते हैं उन्हें मन्त्र सिद्ध कहते हैं ?

(३) दूसरे प्रकार के सिद्ध को दैवसिद्ध भी कहते हैं ?

(४) जो आप ही सदा सिद्ध से पूर्ण बने रहते हैं वे नित्य सिद्ध या आजानसिद्ध हैं।

और तरह से धन पाकर धनवान् हो जाता है, वैसे ही कोई कोई पापी मनुष्य भी अकस्मात् पवित्र होकर ईश्वर के राज्य में प्रवेश पा जाते हैं। लाला बाबू इत्यादि आकस्मिक सिद्ध हो गये हैं।

[१३७] प्रश्न—जीवको यह ज्ञान कि मैं ब्रह्म हूँ क्या कभी हो सकता है? यदि हो सकता है तो सोऽहम् वृत्ति कैसी है?

उत्तर—जैसे गृहस्थ के घर के पुराने नौकर उसी परिवार के समान हो जाते हैं और कभी किसी नौकर का कोई प्रशंसनीय काम देख कर उसका मालिक हाथ पकड़ गद्दी पर बैठा कर सबसे कह देता है कि "आज से इससे मुझमें भेद न मानियेगा। जो यह है वही मैं हूँ, इसकी आज्ञा मेरी आज्ञा समझ कर सब लोग मानेंगे" इत्यादि। यह सुन कर प्रेम से इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त करके नौकर लजाता है, परन्तु स्वामी उसे अपनी गद्दी पर बैठा लेता है। वैसे ही जीवकी सोऽहम् इत्याकारक वृत्ति भी होती है। तात्पर्य यह है कि किसी किसी भक्त की बहुत दिनों की सेवा से प्रसन्न होकर भगवान उसे अपनी ही तरह शक्ति दे देते हैं।

महात्मा

[१३८] "ईश्वर कोटि अन्तर्मुख और जीवकोटि बहिर्मुख होती है", अर्थात् ईश्वरकोटि के लोग अवतारी शरीर में शरीर धारण कर के आते हैं और अवतारी की लीला हो चुकने पर उसी के साथ चले जाते हैं। उनकी न कभी मुक्ति होती है और न कभी वे बद्ध होते

हैं। महात्मा लोग अवतार के अन्तमुर्ख होते हैं। जीवकोटि के लोग साधन भजन करके ईश्वर को प्राप्त करते हैं, पर अवतार कोटि के बहिमुर्ख होते हैं।

[१३९] साधु को साधु ही पहचान सकता है। जो सूत का काम करता है वही कह सकता है कि कौन सूत किस दरजे का है।

× × × ×

[१४०] एक साधु सड़क के किनारे समाधि लगाये पड़ा था उसी समय कोई चोर उधर से जा रहा था। साधु को देख कर वह अपने मन में कहने लगा कि यह भी चोर है, रात को चोरी कर के इस वक्त यहां पड़ा है, अभी पुलिस आकर से इसे पकड़ेगी, मुझे यहां से भाग चलना चाहिये। एक दूसरे शराबी ने उसे देख कर कहा कि यह रात में शराब पीकर नाली में गिरा पड़ा है, मैं यहाँ न रहूँगा। अन्त में एक साधु ने आकर जब देखा तो जान लिया कि यह कोई साधु समाधि लगाये है इसलिये वह उसके चरण की सेवा करने लगा।

पूरे पहुँचे हुए लोग संसारी विषयों से विलग रहते हैं

[१४१] प्रश्न—संसार में रह कर भी उससे अलग रहने वाले और संसार में लिपटे हुये लोग कैसे होते हैं?

उत्तर—जैसे कमल के पत्ते जल में लगे रहते हैं और मछली कीचड़ में रहती है।

[१४२] पनडुब्बी (एक प्रकार की चिड़िया) पानी में रहती है, परन्तु उसके देह में ज़रा भी पानी नहीं लगता। ऐसे ही मुक्त पुरुष भी संसार में रहते ज़रुर हैं परन्तु संसार से निर्लिप्त रहते हैं।

[१४३] हंस की चोंच में न जाने कैसा लासा लगा रहता है कि वह पानी मिले दूध में से जल को छोड़ कर केवल दूध चाट लेता है, दूसरे किसी पक्षी से यह नहीं हो सकता। वैसे ही ईश्वर भी माया से ढँका है, माया का परदा हटा कर दूसरा कोई उसे नहीं देख सकता। केवल परमहंस ही माया छोड़ ईश्वर को ग्रहण कर सकते हैं।

महात्माओं में अहंकार की छाया मात्र रहती है

[१४४] श्री हनुमान् जी को साकार और निराकार ईश्वर का दर्शन हुआ था, पर उन्होंने तब भी सेवक के भाव को ही अङ्गीकार किया था। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार का भी ऐसा ही व्यवहार था।

[१४५] रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठ बनी रहती है, लेकिन जलने के बाद वह बाँधने का काम नहीं दे सकती है । यही बात महात्माओं के अहंकार की भी है।

[१४६] बकरे का सिर काटने पर उसका शरीर थोड़ी देर तक छटपटाता रहता है, जिससे जान पड़ता है कि उसका प्राण तब तक कुछ कुछ रह जाता है। जीवन्मुक्त प्राणी का अहङ्कार भी उसी थोड़ी देर तक रह जाने वाले प्राण की तरह है, परन्तु उन्हें कामिनी नहीं फँसा सकती।

[१४७] प्रश्न—क्या मुक्त पुरुष में माया रहती है ?

उत्तर—पक्के सोने से कोई गहना नहीं गढ़ाया जा सकता है। उसमें थोड़ी खाद (अन्य धातु) मिलानी होती है। उसी तरह माया रहित देह नहीं ठहरती। देह रहने से ही जाना जाता है कि थोड़ी माया बाक़ी है।

पहुँचे हुए मनुष्य के द्वारा प्रचार

[१४८] आग देख कर न जाने कहां से पांखी आकर उसमें जल मरती है। पांखी को आग कभी बुलाता नहीं। जीवन्मुक्त महात्माओं का प्रभाव भी उसी तरह का है। वे किसी को बुलाने नहीं जाते, पर सैकड़ों मनुष्य न जाने कहां से आकर उनसे उपदेश ग्रहण करते हैं।

[१४९] मिठाई का चूरा गिरा रहता है तो गन्ध पाकर चीटियाँ आप ही आप आ पहुँचती हैं। इसलिये आप भी मिठाई के चूरे की तरह बनने की कोशिश करो। चींटियाँ आप ही एकत्र हो जायेंगी।

× × × ×

[१५०] परमहंसजी ने एक हिन्दू धर्म के प्रचारक से पूछा—"क्या तुमने चपरास पाई है?" उसने कहा—"चपरास किसको कहते हैं महाशय?" परमहंसजी ने कहा—"जैसे साधारण पुरुष को चपरासी की पोशाक में देख कर प्रजा उसका आदर करती है, वैसे ही तुमने ईश्वर की नौकरी करके क्या प्रचार का आदेश पाया है?" वह मनुष्य बोला—"जी नहीं।" तब परमहंसजी ने कहा—"तब तो तुम्हारी बात कोई न मानेगा, क्यों व्यर्थ बकवाद करते हो।"

[१५१] प्रश्न—सच्चे धर्म-प्रचार का क्या ढंग है?

उत्तर—ज़बानी 'भजन करो भजन करो', उपदेश देने की अपेक्षा स्वयं भजन कर दिखलाना प्रचार का सबसे अच्छा और सच्चा ढंग है। जो यथार्थ अपनी मुक्ति चाहता है वही ठीक प्रचारक हो सकता है, क्योंकि जो जीवन्मुक्त होते हैं उनसे हज़ारों लोग बिना जबान से कुछ उपदेश दिये ही शिक्षा पा जाते हैं।

[१५२] कच्चा मैदा गरम घी में डालने से पहिले फड़फड़ाता है, पर जितना भुंजता जाता है उतना शब्द कम करता है। भुंज जाने पर उससे कुछ भी शब्द नहीं होता। थोड़ा ज्ञान पाने से मनुष्य व्याख्यान देने का आडम्बर करता है, पर पूरा ज्ञान होने पर वह व्याख्यान का जाल नहीं फैलाता।

जो पहुँचे हुए लोग नहीं हैं उनसे प्रचार कैसे होता है

[१५३] प्रश्न—जो लोग ज्ञान की बातें तो बहुत सुना सकते हैं, पर स्वयं अपने जीवन को बड़ा बिगाड़ रक्खा है, उन्हें आप लोग क्या समझते हैं ?

उत्तर—दूसरों को तो शीघ्र उपदेश देकर वह अपना उपार्जित धर्म-धन गवाँ बैठता है।

[१५४] सांसारिक लाभ की आशा से मनुष्य बहुत धर्म दिखलाता है, पर दुःख, ग़रीबी और मृत्यु की अवस्था आने पर उसका सब भाव जाता रहता है। ऐसे ही जैसे तोता दिन भर राधा-कृष्ण राधाकृष्ण करता है, पर बिल्ली से पकड़े जाने पर केवल टें टें करता है।

[१५५] प्रश्न—आजकल जिस ढङ्ग से धर्म का प्रचार होता है उसे आप कैसा समझते हैं ?

उत्तर—जैसे सौ आदमियों को खाने का न्यौता देकर सिर्फ़ एक आदमी के खाने भर की सामग्री जुटाना। तात्पर्य यह है कि आजकल उपदेशक थोड़ी ही सी साधना करके सैकड़ों के गुरु होने का दावा करने लगते हैं।

[१५६] इस संसार में बहुत से ऐसे लोग होंगे जिन्होंने ईसाई संतपाल का नाम सुना होगा, पर उसे देखा न होगा। ऐसे धर्म-शिक्षक भी अनेक हैं जिन्होंने ईश्वर की चर्चा केवल तत्वशास्त्र में पढ़ी ही भर है, पर जीवन में ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर

पाया है। बहुत से ऐसे लोग निकलेंगे जिन्होंने पाला देखा तो है, पर उसे खाया नहीं है। ऐसे ही अनेक धर्मोपदेशक हैं जिन्होंने ईश्वर की केवल छाया भर पाई है, पर वे यह समझ नहीं सके कि ईश्वर क्या है? जिसने पाला चक्खा होगा, वही उसका स्वाद बता सकता है। ऐसे ही जो शान्ति पूर्वक सेवक भाव से ईश्वर की सेवा करते हैं वे ही उसका बयान कर सकते हैं।

सब शिक्षाओं का प्रधान उद्देश्य ईश्वर ही है

[१५७] जैसे गैस की रोशनी नाना स्थानों में नाना तरह से पड़ती है, पर उसका आधार एक ही रहता है। वैसे ही सब देशों के सभी भक्त एक ही ईश्वर से आते हैं।

[१५८] घर की छत का जल परनाले या किसी और तरह से घर से बाहर बहता है, पर वह जल छत या परनाले का नहीं रहता, वह तो आकाश की वर्षा का जल होता है। ऐसे ही साधु तथा भक्त लोगों के मुंह से जो बातें और तत्व निकल कर प्रचारित होते हैं वे साधुओं के निजी नहीं होते। परमेश्वर की प्रेरणा से ही वे साधुओं के मुंह से निकलते हैं।

सिद्धों की प्रतिष्ठा उनकी जन्मभूमि में नहीं होती

[१५९] प्रश्न—साधु-महात्माओं का पास-पड़ोस के आपसी लोग आदर नहीं करते, पर दूर के मनुष्य उनका आदर करते हैं

इसका क्या कारण है ?

उत्तर—बाजीगर की करामात देखकर बाजीगर के घर के पास वाले लोग प्रशंसा नहीं करते, पर दूसरे लोग आश्चर्यान्वित होकर चुप रह जाते हैं।

[१६०] बजरबट्टू का बिया पेड़ की जड़ में नहीं गिरता। दूर उड़कर धरती पर गिर कर वही अपने पेड़ उगाता है। ऐसे ही धर्म-प्रचार का भाव दूर पहुँच कर प्रकाशित होता है और सब लोग उसे आदर देते हैं।

[१६१] प्रसिद्ध है कि दीवट के तले अँधेरा रहता है। इसी प्रकार सिद्ध-महात्मा के पास वाले लोग महात्मा की क़दर नहीं करते, पर दूर रहने वाले लोगों को उसके कार्य से अचंभा हुआ करता है।

पवित्र साधुओं में ईश्वर की ज्योति का प्रकाश रहता है

[१६२] सूर्य की ज्योति सब स्थान में समान रूप से गिरने पर भी जल और दर्पण में अधिक उज्ज्वल झलकती है। वैसे ही ईश्वर सब के मन में प्रकाशित रह कर भी भक्त के चित्त में विशेष कर प्रकाशित होता है।

[१६३] केवल एक ज्ञान यथार्थ ज्ञान है, शेष सब ज्ञान अज्ञान है।

सत्सङ्ग

[१६४] साधु की संगति धर्म का आचरण करने का एक प्रधान साधन है।

[१६५] जीवन-काल कैसे बिताना चाहिये? जैसे चूल्हे में बुझती आग, अङ्गारे तोड़ कर ईंधन को ठीक कर देने से फिर बढ़ जाती है। वैसे ही बार बार साधु की सङ्गति करके मन को भक्ति की तरफ़ उभाड़ते रहने में जीवन व्यतीत करना चाहिये।

[१६६] जैसे लोहार की दूकान में धौंकनी से आग बार बार सुलगाई जाया करती है। वैसे ही साधु के सङ्ग से मन को बराबर प्रोत्साहित रखना चाहिये।

[१६७] दूर देहात का कारिन्दा रैयत पर बड़ा ज़ुल्म करता है, पर जब वह अपने मालिक जंमीदार के पास आता है तब शाम सबेरे हाज़िरी देता है। रैयत के साथ सुलूक से पेश आता है और रैयत का कोई मुक़द्दमा होता है तो उसे ध्यान से निपटा देता है। सङ्गति के प्रभाव से ही ज़मीदार के करीब आने से उसके डर से ज़ालिम नायब भी सीधा-सा हो जाता है।

[१६८] जैसे भीगी लकड़ी आग में रखने से नमी के सूख जाने से जल उठती है। वैसे ही साधुओं की संगति से स्त्री और धन की इच्छा रूपी नमी सूख जाने से विवेक रूपी अग्नि की ज्वाला भभक उठती है।

[१६९] साधुओं की संगति चावल के धोवन के समान है, चावल का जल नशा दूर करता है। इस कारण नशेबाज़ का नशा

चावल का पानी पीने से दूर हो जाता है। संसार रूपी मद के नशे में मस्त जीवों का नशा मिटाने के लिये केवल साधु संग ही एक उपाय है।

गुरु

[१७०] जिसे साधन की सच्ची लगन है उसे सद्गुरु आप ही आप मिल जाता है। गुरु के खोजने की चिन्ता साधक को नहीं करनी पड़ती।

[१७१] समुद्र में एक प्रकार की सीपी होती है। वह समय समय पर मुँह खोल कर जल पर उतराती है, परन्तु स्वाती नक्षत्र की बरसात का एक बूँद पानी पड़ते ही वह मुंह बन्द करके फ़ौरन नीचे चली जाती है, फिर ऊपर नहीं आती। वैसे ही तत्त्व के खोजी, श्रद्धालु साधक भी गुरु मन्त्र रूपी एक बूंद जल कान में पड़ते ही साधना के गम्भीर जल में तुरन्त डूब जाते हैं वे फिर दूसरी ओर देखना नहीं चाहते।

[१७२] नराकार गुरु फूँकै कान।
हरिगुरु मंत्र दे जुड़वै प्रान।

[१७३] गुरु एक कुटने मनुष्य की तरह है। कुटना आदमी जैसे कुटनेपन से किसी स्त्री को किसी पुरुष से मिला देता है, गुरु भी उसी प्रकार मनुष्य को ईश्वर से मिला देता है।

एक ही गुरु काफ़ी होता है

[१७४] किसी अनजानी जगह में जाने के समय मार्ग जानने वाले का कहना मानना उचित है, क्योंकि बहुत लोगों से मार्ग पूछने में गड़बड़ी हो जाती है। ईश्वर के पास पहुँचने के लिये भी एकही ऐसा गुरु चाहिए जो उसके पास पहुँचने का मार्ग जानता हो।

[१७५] प्रश्न—जिस जिस से हमें कुछ कुछ उपदेश मिले उसी उसी को गुरु न कह कर किसी विशेष मनुष्य को ही गुरु नियत करने की क्या खास ज़रूरत है ?

उत्तर—जो आदमी सच्ची उत्कण्ठा और सच्चे मनसे ईश्वर को पुकारता है उसे गुरु की आवश्यकता नहीं है, पर ऐसे लोग बिरले ही होते हैं। अतः गुरु की ज़रूरत पड़ती है। आचार्य एकही होता है, हाँ उपाध्याय अनेक होते हैं। प्रसिद्ध है कि श्री दत्तात्रेयजी महाराज ने चौबीस गुरु किये थे, जो हमें कुछ भी उपदेश दे वही गुरु है, पर आचार्य सब नहीं हैं।

[१७६] जो अपने गुरु या आचार्य को सर्व साधारण मनुष्य के समान समझेंगे, वे उसके गुरुभाव से कुछ भी लाभ न उठा सकेंगे।

शिष्य, गुरू के दोष की ओर उपेक्षा रक्खे

[१७७] 'चाहे गुरु कलवरिया जाय,

मेरे तो नित्यानन्द राय'।

शिष्य को चाहिये कि गुरु के आचरण की ओर देखने का ध्यान ही न करे, बल्कि जो कुछ गुरु आज्ञा दें उसी का पालन करे।

[१७८] कोई मनुष्य गुरु के विषय में परमहंस के सामने तर्क वितर्क कर रहा था। उससे परमहंस देव बोले—'तुम्हारी इन बातों से क्या फ़ायदा है? तुम्हें अगर मोती की दरकार हो तो मोती लेकर सीपी फेंक क्यों नहीं देते?'

[१७९] गुरु की निन्दा नहीं सुननी चाहिये। जहां गुरु-निन्दा होती है वहां से उठ कर दूसरी जगह चला जाना चाहिये।

गुरु आध्यात्मिक उन्नति में सहायता करता है

[१८०] चोपड़ के खेल में, गोटी सब घर घूम कर चिक में आती है और जुग बांध कर चलने वाले का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अगर जुग न बांधे जायँ तो गोटी कटने पर गोटी मार ली जाती है, इसी तरह संसार में भी जो ईश्वर के साथ जुग बांधकर व्यवहार कर सकता है उसे हार खाने का खटका नहीं रहता।

[१८१] गहरे समुद्र में जहाज़ के मस्तूल पर बैठा हुआ पक्षी जब बैठा बैठा थक जाता है, तब बैठने के लिये दूसरी जगह ढूंढ़ने को उड़ जाता है और इधर उधर दूर दूर तक दूसरी जगह न पाकर निराश हो फिर उसी मस्तूल पर आ बैठता है और सम-

झता है कि सिर्फ़ यही मेरा ठिकाना है। * उसी तरह भक्त किसी एक गुरु की आराधना से घबड़ा कर कभी कभी निराश हो जाता है और दूसरे गुरु को ढूंढ़ने के लिये इधर उधर भटकता है, परन्तु उसको कुछ दिन के पीछे फिर उसी गुरु के पास लौट आना पड़ेगा और फिर व्यर्थ भटकने के पछतावे से याद होता रहेगा कि मैं व्यर्थ भटक चुका हूँ। लेकिन उस भटकने से भी फायदा ही होता है, क्योंकि उस बात की याद करके उस गुरु के ऊपर उसकी भक्ति अधिक हो जाती है।

[१८२] लाखों गुरु मिलते हैं पर चेला एक भी नहीं मिलता। उपदेश तो बहुतेरे देते हैं पर उपदेश पर चलने वाले बहुत कम होते हैं।

[१८३] प्रश्न—कौन किसका गुरु है ?

उत्तर—एक ईश्वर ही सबका गुरु है।

संन्यासी

[१८४] प्रश्न—सन्यास ग्रहण करने का अधिकारी कौन है ?

---

* दोहा—सीतापति रघुनाथ जी, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज़ को, सूझै और न ठौर॥
—तुलसीदास

"जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पर आवैं।"
—सूरदास

उत्तर—जो ताड़ के पेड़ पर चढ़ जावे* और वहां से हाथ पांव फैलाकर चोट खाने का भय छोड़ कर गिरने का साहस रखे। बस वही संन्यास का अधिकारी है।

[१८५] योगी और संन्यासी सांप की तरह हैं। सांप अपने लिये बिल कभी नहीं बनाता, मूसे के बिल में घुस कर रहता है। जब एक बिल उसके रहने योग्य नहीं रहता, तब दूसरे बिल में चला जाता है। ऐसे ही योगी और संन्यासी अपने लिये घर नहीं बनाते। आज इसके घर कल उसके घर रह कर अपने दिन काट लेते हैं।

[१८६] साधु और देवता का दर्शन करने ख़ाली हाथ नहीं जाना चाहिये और कुछ न हो तो हर्र ही लेकर जाना चाहिये।

[१८७] माता भगवती! मैं पृथ्वी में कोई मान-प्रतिष्ठा नहीं चाहता। मैं इस जड़ देह का कोई सुख भी नहीं भोगना चाहता। मेरी तबीअत को अपनी ओर तू ऐसा बहा दे, जैसे गङ्गा यमुना सदा के लिये तीर्थराज (प्रयाग में) मिली हुई हैं †। माता! मुझमें भक्ति नहीं है। मैं योग के बिना दीन-अनाथ हूँ। मैं किसी से प्रशंसा पाने का भूखा नहीं हूँ। अपने चरण कमलों में मेरे मन को स्थिर करके रख ले।

---

* साईं का घर दूर है जैसा लम्ब खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस नहीं तो चकनाचूर॥

—कबीरदास

† तेरी मेरी प्रीति कैसे बाढ़ै। जैसे गङ्गा में यमुना लहर मारे॥

आध्यात्मिक जीवन शक्ति

[१८८] शक्ति के बिना ब्रह्म के जानने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि शक्ति समझ कर ही ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

[१८९] बन में जब किसी तरह का फूल खिलता है तो उसकी सुगन्ध ही इधर उधर फैल कर सबको फूल के खिलने का समाचार पहुँचाती है। इसी तरह ब्रह्म की शक्ति ही ब्रह्म का निरूपण कर देती है।

[१९०] जिस शक्ति द्वारा सारे संसार की रचना हुई है, उसे आद्या शक्ति या भगवती कहते हैं। काली, दुर्गा, जगद्धात्री ये उसी के नाम हैं। इस शक्ति ही से जड़ और चेतन दोनों शक्ति उत्पन्न होती है। मानों एक पेड़ के एक ही फूल से एक ही फल उत्पन्न हुआ हो। उसका कुछ अंश कठिन, कुछ अंश नरम और कुछ अंश दूसरा कुछ हो गया हो। जैसे बेल के फल के बाहर का छिलका, भीतर का गूदा और उसका सूत और गठन ये सब एक ही कारण से उत्पन्न हुए हैं। उसी प्रकार चैतन्य शक्ति से जड़की उत्पत्ति होना असम्भव नहीं है।

[१९१] हा! इस संसार की हरियाली को देख कर ही लोग पागल हो जाते हैं। इस बाग़ की एक एक पुतली ही ऐसी है जो योगी ऋषियों तक के मन को खींच रही है, मामूली लोगों की तो कुछ बात ही नहीं। पर इस बाग के मालिक के दर्शन के

लिये कितने लोग लालायित हो रहे हैं* ?

[१६२] ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। जब नित्य, शुद्ध, बुद्ध केवल आत्मा के आभास में रहता है, वह ब्रह्म है और जिस समय गुण या शक्ति से युक्त होता है तब ईश्वर कहा जाता है।

[१६३] साकार, निराकार साधक की अवस्था के भेद हैं। ओंकार उच्चारित होने पर उसकी प्रथम अवस्था में साकार, द्वितीय अवस्था में निराकार और उसके बाद साकार-निराकार दोनों की अतीत अवस्था में होता है।

[१६४] निराकार साधन की प्रथमावस्था में है, द्वितीय अवस्था में साकाररूप दर्शन है और तृतीयावस्था में प्रेम का सञ्चार होता है। साधक जब साकार रूप का दर्शन करता है तब उसकी वह नित्यावस्था है। उस समय फिर उसका जड़ पदार्थ में मन बंधा नहीं रहता, किन्तु वह अवस्था बहुत देर तक नहीं रहती। इस कारण फिर उसको जीवात्मा में आना पड़ता है। उस समय उसकी केवल नित्यावस्था के दर्शनादि का स्मरण भर रहता है।

[१६६] साकार रूप 'ज्योतिर्घन' होता है, उसमें किसी प्रकार का 'जड़ाभास' नहीं होता। जब किसी रूप की उत्पत्ति होती है, तब पहिले वह धुएं की तरह दिखलाई पड़ता है। पीछे किसी विशेष आकार को धारण करती है और भक्त से बातें करता

---

* आरामभस्य पश्यन्ति न ते पश्यति कश्च न।

—श्रुति

है, मुहँ मागे वर देता है। पीछे रूप गल कर धीरे धीरे अदृश्य होता है।

[१६६] ज्योतिर्घन के अतिरिक्त अन्य प्रकार का भी साकार रूप है। मनुष्य के आकार में कभी कभी भक्त के पास उसका स्वरूप देखा जाता है।

ज्ञान, भक्ति और प्रेम

[१६७] अन्य युगों में अनेक प्रकार के साधनों का नियम था, पर इस समय उन सब साधनों से सिद्धि होने में कठिनाई है। इसका कारण यह है कि एक तो आज कल लोगों की उम्र ही बहुत कम है, तिस पर नाना प्रकार के रोग और शोक से लोग जर्जर हो रहे हैं, कठोर तपस्या किस तरह कर सकते हैं? इसलिये भक्ति मत ही इस युग में सब से अच्छा है। "कलि विवेक नहिं आन उपाऊ।"

[१६८] विचार दो प्रकार के हैं, अनुलोम और विलोम। बाहर को छोड़ कर भीतर पकड़ना इसको विलोम और भीतर से बाहर पकड़ना इसको अनुलोम कहते हैं। जैसे बेल का फल छाल, लासा, गूदा और बीज आदि की समष्टि है, इस विचार को विलोम कहते हैं। इन सब की एक सत्ता से उत्पत्ति हुई है, यह ज्ञान अनुलोम विचार से उत्पन्न होता है।

[१६९] ज्ञान और भक्ति नित्य हैं। लीला भाव अथवा आत्म-

तत्त्व और सेव्य सेवक भाव, इन मार्गों को लेकर विद्वानों में सर्वदा आपस में वाद विवाद हुआ करते हैं। ज्ञानी लोग कहते हैं कि ज्ञान बिना अन्य उपाय से ईश्वर लाभ नहीं हो सकता और भक्ति मार्ग में भक्ति ही की प्रधानता कही जाती है। चैतन्य-चरिता मृत में लिखा हुआ है कि 'ज्ञान' पुरुष है, वह घर के बाहर की वार्ता कह सकता है और 'भक्ति' स्त्री है। वह अन्तःपुर के समाचार देने में समर्थ है। इस कारण ज्ञान मार्ग से जो ज्ञान उपार्जित होता है वह सर्वथा स्थूल और साधारण बात है। भक्त लोगों के विचार से भक्ति ही श्रेष्ठ है।

[२००] ज्ञान का मतलब है परोक्षरूप से जानना और विज्ञान का अर्थ है परोक्षरूप से विशेष कर के जानना। विज्ञान के पीछे (भगवान का साक्षात्कार होने पर) भक्त के मन में जिस प्रकार की भावना उदय होती है उसी को भक्ति कहते हैं। इसको विशुद्ध विज्ञान भी कह सकते हैं। यह 'विशुद्ध विज्ञान और भक्ति वास्तव में एक ही वस्तु है। इनमें परस्पर कुछ भी भेद नहीं है।

[२०१.] भक्तों का अनुभव उनका अन्तिम अनुभव नहीं है। कारण यह है कि उनकी वह अवस्था चिरस्थायी नहीं रह सकती। देह की रक्षा के लिये भोजन करना जरूरी होता है, क्योंकि खाना न खाने से शरीर कमज़ोर हो जाता है। यह भगवान् का बनाया नियम है, जो लोग भगवान् के रूप के ध्यान में निरन्तर निमग्न रह सकते हैं, उनका देह इक्कीस दिन से अधिक नहीं जीवित रह सकता। देहान्त होने पर उनकी कैसी अवस्था होती है यह बात बतलाने की किसी

में सामर्थ्य नहीं है। दैहिक सम्बन्ध से विचार करने में ज्ञानी का निर्वि-कल्प समाधि लगाना और भक्त की अवस्था दोनों एक ही बात समझी जाती है।

[२०२] कलिकाल की उपासना में तमोगुण-प्रधान साधन को छोड़कर सतोगुण-प्रधान साधन नहीं हो सकते। सतोगुण-प्रधान उपासना में माधुर्य्य भाव से कार्य्य होता है और तमोगुण-प्रधान उपासना में दाम्भिकता के लक्षण प्रगट होते हैं। जैसे किसी धनी की उपासना करके कुछ धन पाना सतोगुण-प्रधान कहा जाता है। इस प्रसङ्ग में भगवान् की कृपा प्राप्त करना उद्देश्य है। तमोगुण-प्रधान उपासना में यह बात नहीं होती। जैसे डकैत लोग पहिले इसका पता लगाते हैं कि घर में कहाँ धन रक्खा हुआ है। पीछे काली पूजा के अन्त में मद्य-पान कर 'जय काली' जय काली' कह कर, वस्त्र का टुकड़ा फाड़, रे रे शब्द करते हुए घर का द्वार तोड़, उस में घुस कर सब धन लूट ले जाते हैं। तमोगुण-प्रधान साधन भी इसी प्रकार का है। 'जय काली जय काली' पुकार कर उन्मत्त हो जाना, अथवा 'हरि बोल हरि बोल' कह कर मत्त हो जाना, ये दोनों बातें तमोगुण प्रधान साधन की तरह हैं।

[२०३] पहिले अद्वैतज्ञान को प्राप्त कर लो फिर जो इच्छा हो करो, परन्तु जब जैसी इच्छा हो वैसा ही मत किया करो।

[२०४] ईश्वर प्राप्ति दो प्रकार की है। प्रथम जीवात्मा और परमात्मा का अभेदज्ञान, द्वितीय ईश्वर के स्वरूप का दर्शन। इन दोनों प्रकारों में एक का नाम ज्ञान है और दूसरे का भक्ति।

[२०५] आत्मा ज्योतिःस्वरूप है, केवल अहंकार के परदे से वह ढका रहता है। अहंकार के नष्ट होने ही से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान की ज्योति से परमात्मा के साथ शीघ्र ही जीव का ऐक्य हो जाता है।

[२०६] सब से पहिले अभिमान को छोड़ना चाहिये, क्योंकि आत्मज्ञान के दरवाज़े पर अभिमान एक वृक्ष की तरह मानों राह रोके खडा रहता है। ज्ञानरूपी कुल्हाड़ी से जब उसको काट दिया जायगा, तब परमात्मा का दर्शन आसानी से हो जायगा।

[२०७] भक्ति दो प्रकार की है। एक ज्ञानप्रधान-भक्ति और दूसरी प्रेमप्रधान-भक्ति। ईश्वर की सत्ता का श्रवण, अर्चन, वन्दन और आत्मनिवेदन इत्यादि कार्य को ज्ञानप्रधान, विश्वासभक्ति कहते हैं। ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद इन्हीं ऊपर कहे हुए कामों के करने को भजनात्मक प्रेम प्रधान भक्ति या विज्ञान कहते हैं।

[२०८] भक्तिमत में प्रथम विश्वास उत्पन्न होता है। फिर भक्ति, उसके बाद भाव-भक्ति प्रकट होती है। सब के अन्त में महा-भाव का उदय होता है।

[२०९] भक्ति पाँच प्रकार की समझी जाती है :—

(१) अहैतुकी (२) उद्दीप्ता (३) ज्ञान भक्ति (४) शुद्धभक्ति, (५) मधुरा या प्रेमा भक्ति।

[२१०] भाव भक्ति पांच प्रकार की होती है :—

(१) शान्त (२) दास्य (३) सख्य (४) वात्सल्य और (५) मधुर।

[२११] भाव भक्ति के परिपक्व हो जाने पर उसे प्रेमा भक्ति कहते हैं।

[२१२] प्रेमा भक्ति चार प्रकार की होती है :—

(१) समर्था (२) समञ्जसा (३) साधारणी और (४) एकाङ्गी।

अपने सुख या दुःख को कुछ न समझ प्रभु के सुख के लिये कार्य में आत्म समर्पण कर देना समर्था प्रेमाभक्ति है। श्रीमती राधिकाजी का प्रेम ऐसा ही था।

जिससे प्रेम करता हूँ उसे पाऊँ तो हम दोनों सुखी हों, इस प्रकार के प्रेम का नाम समञ्जसा प्रेमाभक्ति है।

जब तक प्रेम की जाने वाली वस्तु नहीं मिलती, तब तक उसे प्राप्त करने के लिये जो अनुराग भाव रहता है उसे साधारणी प्रेमाभक्ति कहते हैं। साधारण गोपियों की यही प्रेमाभक्ति थी।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को प्यार करता है, परन्तु वह दूसरा मनुष्य उस प्रथम मनुष्य का अनुरागी नहीं है, ऐसे एकतर्फ़े प्रेम को एकाङ्गी प्रेमाभक्ति कहते हैं। जैसे पतङ्ग तो दीपक को चाहता है पर दीपक पतङ्ग को नहीं चाहता।

[२१३] जो ईश्वर को अपना मन प्राण समर्पण करके जीवन बिताता है, उसके मन में दूसरा कोई भाव नहीं आता। भजन छोड़ कर उससे दूसरे किसी तरह का काम भी नहीं हो सकता। वह जो कुछ करता है, जो कुछ कहता है, ईश्वर को छोड़ और कुछ नहीं होता। इसका फल यह होता है कि उसको अवश्य ईश्वर प्राप्त होता है। जो भक्त तरह तरह की इधर उधर की बातों में अपना मन

जितना ही बाँटे रहता है, उतना ही वह ईश्वर सम्बन्धी भाव से अलग बना रहता है। इसलिये सिद्धि में वह उतना ही पिछड़ भी जाता है।

[२१४] पागल हुए बिना ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। चाहे कुछ न कुछ जान बूझ कर पागल बनो अथवा सब शास्त्र पढ़ लिख कर मूर्ख बनो। जिसमें सुभीता समझो वह करो, पर पागल ज़रूर बनो।

[२१५] हे मित्रगण! हम लोग जब तक जीते रहते हैं तब तक सीखते ही रहते हैं।

[२१६] भगवान्, भगवान् की भक्ति और भगवान् के भक्त ये तीनों देखने में अलग अलग होते हुए भी असल में एक ही हैं।*

[२१७] प्रश्न—प्रेमा-भक्ति का लक्षण क्या है?

उत्तर—प्रेमा-भक्ति की सहायता से साधक ईश्वर को आत्मीय समझता है, जैसे गोपियाँ श्रीकृष्ण को जगन्नाथ न कहकर गोपी-नाथ कहती थीं।

[२१८] प्रश्न—भक्तगण देवी को बार बार माता कह कर पुकारने में इतने उतावले क्यों रहते हैं?

उत्तर—क्योंकि माता के आगे लड़के बहुत इठलाते हैं।

[२१९] किसी तार्किक ने परमहंसजी से पूछा—'ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता ये तीनों क्या है?' परमहंसजी ने उत्तर दिया—'इतनी

---

* त्रिधाप्येकं सदाऽगम्यं गम्यमेक प्रभेदनैः। प्रेम प्रेमी प्रेमपात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम्।

भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक। —भक्तमाल

विद्या तो मुझमें नहीं है जो इनका भेद बतला सकूं।' बाबा! मैं तो केवल माता भगवती को सब कुछ जानता हूँ।' पाठकगण! सोचो कि इस उत्तर से परमहंस जी ने ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता इन तीनों का निरूपण कर दिया, क्योंकि परमहंसजी देवी के तत्वज्ञ थे*।

[२२०] जैसे पतिङ्गा प्रकाश देख कर आप ही अग्नि में गिरता है, वैसे ही भक्त भी भगवान् के लिये सब कुछ तज देता है।

[२२१] दाद को जितना खुजलाते जाओ उतना ही अच्छा मालूम होता है। भक्त भी भगवान् के नाम के गीत गाने से तृप्त नहीं होते, बल्कि उसमें अधिकाधिक उत्तेजित होते हैं।

प्रत्येक मनुष्य अपने अपने धर्म का अनुसरण करे

[२२२] प्रश्न—मार्ग कौन सा पकड़ना चाहिये?

उत्तर—तुम्हारे (हिन्दुओं के) लिये आर्य ऋषियों से परम्परा प्राप्त सनातन वर्णाश्रम धर्म ही श्रेष्ठ है।†

[२२३] चहार दीवालों या मेंड़ बनाकर लोग अपनी ज़मीन

---

* समाधि में परमहंसजी का देवी से ऐक्य हो जाता था। देवी ही उनका ज्ञेय थीं, क्योंकि परमहंसजी ने उन्हें जान लिया था और परमहंसजी का देवी विषयक ज्ञान ही ज्ञान था।

† परमहंसदेव की दृष्टि में प्रत्येक सम्प्रदाय का मनुष्य सर्वदा उसी सम्प्रदाय के मनुष्यों द्वारा सम्मानित था। उनके हिन्दू धर्म के श्रेष्ठ कहने से उन्हें कोई किसी सम्प्रदाय के अंतर्गत न समझे, क्योंकि जो जिस धर्म मत को मानता था, वे उसे उसी धर्म के अनुसार कार्य करने का उपदेश देते थे।

को तो घेर लेते हैं, पर आकाश को कोई बाँट नहीं सकता, क्योंकि आकाश तो सबके ऊपर है। मनुष्य अज्ञान के कारण अपने धर्म को सबसे ऊँचा और सच्चा बतलाता है, पर ज्ञान होने पर सब धर्मों के भीतर उसे वही एक अखण्ड सच्चिदानन्द परमेश्वर झलकता है।

[२२४] सब कोई अपनी अपनी धरती की सीमा चहार दीवाली उठाकर बाँट लेते हैं, परन्तु आकाश का विभाग कोई नहीं कर सकता। ऐसे ही अज्ञानी अपने धर्म को ही सर्वोत्कृष्ट कहते हैं, पर जिनको चैतन्यज्ञान प्राप्त होता है वे देखते हैं कि सब धर्मों के मूल में एक अद्वितीय अखण्ड सच्चिदानन्द ही विराजमान हैं।

[२२५] माता जैसे आवश्यकता का विचार करके एक बालक के लिये दाल, भात और अन्य बालक के लिये साबूदाना पकाती है, भगवान् भी उसी प्रकार प्रत्येक जीव के लिये उपयुक्त साधन प्रदान करता है।

अन्य धर्मों पर विद्वेष भाव नहीं रखना चाहिये

[२२६] साधक लोग तरह तरह के धर्मों के विषय में कैसा विचार रखते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में परमहंसजी ने कहा—"सच्चे साधु साधक भक्त को यह समझना चाहिये कि दूसरे दूसरे धर्म भी मनुष्यों की भिन्न भिन्न रुचि के अनुसार भगवान् के पास पहुँचने के ही एक एक रास्ते हैं।

[२२७] तुम अपने विश्वास के ऊपर हमेशा दृढ़ और अटल

बने रहो, पर अपने धर्म को ही सबसे बड़ा कहने के कट्टरपन को बिलकुल छोड़ दो।

× × × ×

[२२८] किसी कुएँ में एक मेंढ़क रहता था। दैवात् उसी कुंए में समुद्र का रहने वाला एक दूसरा मेंढक आ गिरा। कुंए के मेंढ़क ने उससे पूछा—'बतलाओ समुद्र कितना बड़ा है?' दूसरे मेंढ़क ने कहा—'बहुत ही बड़ा है'। कुंए के मेंढ़क ने अपने पांव फैलाकर कहा—'क्या इतना बड़ा है'? समुद्र का मेंढ़क बोला—'इससे भी कहीं अधिक बड़ा है'। 'कुंए के मेंढ़क ने कुंए की एक ओर से दूसरी छोर तक छलाँग मारकर कहा—'इतना बड़ा?' तब समुद्रवासी मेंढ़क ने कहा—'इससे भी बहुत ही बड़ा है।' कुंए का मेंढक उसकी बात की प्रतीत न कर सका और बोला 'तुम झूठे हो, झूठ कहते हो। इतने बड़े इस कुंए से भी बड़ी भला कहीं कोई चीज़ हो सकती है?' इस कहानी का मतलब यह है कि ऐसे ही छोटी बुद्धि के जीव अपनी बात के आगे सबको झूठा ठहराते हैं।

विवाद मत उठाओ

[२२९] धर्म के सम्बन्ध में वाद-विवाद मत करो। जैसे तुम अपनी बात को आदर देते हो, वैसे ही सब लोगों को अपनी बातों का आदर करने दो। कोरे तर्क से कोई कुछ न समझेगा। ईश्वर की दया से सबको अपनी अपनी भूल खुद मालूम होगी।

[२३०] देखो ! जिस जलाशय में थोड़ा जल है, उसका जल ऊपर से धीरे से लेकर पीना उचित है। उसका पानी हिलाना उचित नहीं है क्योंकि हिलाने से नीचे की गंदगी ऊपर आकर ऊपरी साफ पानी को भी मैलाकर देती है। ऐसे ही यदि पवित्र होने की इच्छा हो तो श्रद्धालु होकर धीरे धीरे साधना करो। कपोल कल्पित शास्त्र के तर्क-वितर्क में मत फंसो। तर्क-वितर्क करने से मनुष्य का दुर्बल मन भ्रम में पड़ जाता है, उससे हानि के सिवा लाभ कुछ नहीं होता।

[२३१] मधु मक्खी पुष्प के चारों ओर पहले गूंजती फिरती है तब शहद पाती है और जब शहद पाती है तब आप चुप हो जाती है फिर गूंजती नहीं। ऐसे ही जब तक मनुष्य धर्म धर्म चिल्ला कर शोर मचाता है तब तक वह धर्म को नहीं पाता, किन्तु जब धर्म पाता है तब चुप हो जाता है।

[२३२] छूछे घड़े में पानी भरने से शब्द होता है, परन्तु भरे घड़े में जल भरने से फिर और शब्द नहीं होता। ऐसे ही जिसकी ईश्वर से भेंट नहीं हुई है वह ईश्वर के विषय में कोलाहल मचाता है, परन्तु जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है वह स्थिरता से उसके ध्यान का आनन्द लेता है।

शास्त्रोक्त क्रिया तथा वर्णाश्रम धर्म

[२३३] जब अपनी पूंछ और मूंड़ काट छाँट दोगे तभी सब लोग तुम्हें लेंगे, क्योंकि आज कल के लोग अपने को सारग्राही समझते हैं।

[२३४] प्रश्न—भीतर जब एक सच्चिदानन्द ही सत्य है तो शास्त्रों में कहे गये आचार सम्बन्धी आडम्बर की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—चावल बड़ी आवश्यकीय चीज़ है ज़रूर, पर बिना भूसी का चावल बोने से धान की खेती नहीं होती। यद्यपि धान की भूसी से और कुछ काम नहीं निकलता, पर बिना भूसी के धान का पौधा नहीं उगता। ऐसे ही शास्त्रोक्त विधियों को यथा शक्ति किये बिना धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता।

[२३५] भीतर के अध्यात्मभाव और वाह्य में विधि विहित क्रिया के अनुष्ठान के चिन्ह दोनों को सामञ्जस्य से मानना चाहिए, क्योंकि उनमें से एक आभ्यन्तर भाव है और दूसरा वाह्य में परिचायक चिन्ह है। तात्पर्य यह है कि भीतर बाहर एकसा होना चाहिये।

[२३६] पूजा तब तक करनी चाहिये जब तक हरिनाम सुन कर प्रेम का आंसू न टपक पड़े। कान में भगवान् का नाम सुनते ही जिसकी आंख से जल निकल आता है, उस मनुष्य को पूजा करने की ज़रूरत नहीं है।

[२३७] प्रश्न—सात्विक, राजस या तामस पूजा कैसे होती है ?

उत्तर—जो मनुष्य अत्यन्त भक्ति से मानसिक पूजा करता है और लोगों को दिखाने के लिये कोई आडम्बर नहीं करता, उसकी पूजा को सात्विक पूजा कहते हैं। पूजा के लिये घर सजाना, फलाहार तथा नाच-गान आदि का प्रबन्ध करना राजस-पूजा

कहलाती है। तीसरा पुरुष जो न केवल नाच गान करता है, वरन् पशुबलि भी देता और मदिरा चढ़ाता है उसका पूजन तामस पूजन कहलाता है।

सम्प्रदाय

[२३८] ढेर जुटाना क्या अच्छा है? सत्य है, बहती जलधार में कमल नहीं लगते, किन्तु बंधे जल में कमलों का झुंड पैदा होता है। ऐसे ही जिस मनुष्य का मन ईश्वर की ओर है वह किसी कार्य के लिये ज़खीरा बांधने को समय नहीं पाता। इसके विपरीत जो मनुष्य आदर और प्रतिष्ठा का भूखा है, वह ढेर जुटाता है।

[२३९] जिन दिनों कलकत्ते में एक ओर पण्डित शशिधर तर्कचूड़ामणि हिन्दूधर्म का और दूसरी ओर पण्डित शिवनाथ शास्त्री ब्राह्म धर्म का पक्ष लेकर विवाद कर रहे थे, उस समय परमहंसदेवजी के पास बहुत से लोग आये। उनमें से कोई इस पक्षवादी की और कोई उस पक्षवादी की प्रशंसा करने लगा। परमहंसदेवजी सबकी बातें सुन कर बोले—'मैं देखता हूँ कि मेरी सच्चिदानन्दमयी माता दोनों दलों से अपना कार्य सिद्ध कर रही हैं।'

[२४०] प्रश्न—हिन्दुओं के बीच तरह तरह के धर्म प्रचलित हैं उनमें से हम किस को मानें?

उत्तर—पार्वती ने श्री शंकरजी से पूछा—'भगवान् सच्चिदानन्द

का आरम्भ कहां है ?' महादेवजी ने कहा—'विश्वास में ?' तात्पर्य यह है कि धर्म-भेद से कुछ नहीं होता है। जो जिस धर्म का मानने वाला हो वह विश्वास पूर्वक उसी का अनुसरण करे।

[२४१] एक ब्रह्म समाजी साधु ने परमहंस जी से पूछा—'ब्राह्म धर्म और हिन्दूधर्म में क्या भेद है ?' परमहंसदेव ने कहा—'जैसा पों पों बजा कर स्वर निकालने में। ब्राह्म धर्म एकमात्र ब्रह्म का पों पों पकड़े हुये है और हिन्दूधर्म उसके ऊपर नाना प्रकार का स्वर निकाल रहा है।'

× × × ×

[२४२] प्रश्न—धर्म कभी कभी विकृत भाव क्यों धारण करता है?

उत्तर—हां ! आकाश का जल तो स्वच्छ होता है, पर छत और पनारे में बहते ही वह मैल के मेल से मैला हो जाता है।

धर्म की बात कहना आसान है पर उस पर चलना कठिन है

[२४३] 'हुक्क़ा चिलम तम्बाकू आग' मुंह से बोलना तो सहज है, पर तबले में इसका बोल बजाकर निकालना जैसा कठिन है, वैसे ही धर्म की बात मुखसे कहना सहज है, पर उसे अमल में लाना कठिन है।

[२४४] मुंह से बार बार ढोल ढोल कहने से ढोलक से कभी

एक आवाज़ भी नहीं निकलती। ऐसे ही मुंह से बड़ी बड़ी ज्ञान गाथा कहने भर से परमार्थिक शक्ति प्राप्त नहीं होती।

[२४५] एक मनुष्य बच्चे को गोद में लेकर किसी साधु के पास औषधि मांगने गया। उस दिन साधु ने कहा—'आज जाओ कल आना।' जब दूसरे दिन वह आया तब साधु ने कहा—'इसे गुड़ न खिलाओ तो यह लड़का अच्छा हो जायगा।' यह सुन कर उस मनुष्य ने कहा—'आपने यह बात कल ही क्यों नहीं बतला दी ?' साधुने कहा—'कल मेरे पास गुड़ था। लड़का गुड़ का नाम सुनता तो मुझसे माँगता।' तात्पर्य यह है कि साधु लोगों का काम देख कर अक्सर मामूली लोग भी उसकी नक़ल करने लगते हैं। दूसरे से जैसा कराने की इच्छा हो वैसा पहले आप करना चाहिये।

दो प्रकार की प्रवृत्तियों को लिये हुए मनुष्य जन्म लेता है

[२४६] मनुष्य के भीतर अहन्ताबुद्धि दो प्रकार का कार्य दे सकती है। उनमें से उसका एक कार्य तो पक्का है पर दूसरा कच्चा। हमारा घर, हमारा लड़का, हमारी स्त्री, हमारा धन इत्यादि माया से पूर्ण अहन्ता का कार्य कच्चा है और जो कुछ सुनते देखते हैं वह सब यहाँ तक कि शरीर भी हमारा नहीं है। हम तो

नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ज्ञानस्वरूप हैं, ऐसी भावना अहन्ता का पक्का कार्य है।

[२४७] तराजू का पल्ला जिस ओर भारी होता है उसी ओर झुक जाता है और जिस ओर हलका होता है उस ओर ऊपर को उठ आता है। इसी प्रकार जिसके ऊपर सांसारिक मान, सम्भ्रम, रुपया इत्यादि तरह तरह का भार लदा है, वही नीचे जाता है अर्थात् नरक पाता है और जिसके शिर पर कोई भी भार नहीं है वह उठ कर ईश्वर के राज्य में पहुंचता है।

[२४८] छोटी मछली जाल के भीतर जल जाते देख कर सुख से उसमें घुस जाती है, पर फिर बाहर नहीं आ सकती। ऐसे ही संसार में भी वाह्य चमत्कार देख कर लोग उसमें भूल से फँस कर मर जाते हैं। भवजाल में फँसते कुछ देर नहीं लगती, पर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

बालकों के हृदय को ईश्वर की ओर झुकाओ

[२४९] कच्चा बांस आसानी से झुक जाता है और पक्का बांस झुकाने से टूट जाता है *। लड़कों का मन ईश्वर में लग सकता है, पर बुड्ढों का मन उससे उचट जाता है।

[२५०] आम का पक्का फल भगवान् को चढ़ाया जाता और दान आदि दूसरे कामों में भी लाया जाता है, पर एक बार कौवे के

---

* फिर न नवइ जिमि उकठि कुकाठू। —तुलसीदास

चोंच मारने से वह किसी काम का नहीं रह जाता, क्योंकि अशुद्ध हो जाने से न भगवान् को वह चढ़ाया जा सकता है, न ब्राह्मण को ही दान दिया जा सकता है और न खाया ही जा सकता है। ऐसे ही पवित्र चित्त वाले बालक या युवा को धर्म मार्ग पर ले जाना आसान है। इसलिये बालकों को ईश्वर की ओर ले जाने का यत्न करना उचित है, क्योंकि उनका मन विषय-वासना से दूषित नहीं रहता, परन्तु यदि एक बार भी उनके मनमें विषय-बुद्धि आ जाती है अथवा स्त्री रूपी राक्षसी उन्हें अपने फंदे में फंसा लेती है तो फिर धर्म पथ पर लाना कठिन होता है।

[२५१] बूढ़ा तोता राम राम नहीं कहता, अर्थात् कण्ठ फूटने पर वह और पढ़ना नहीं सीख सकता। ऐसे की छोटेपन में पढ़ाने से बालक पढ़ सकता है, बुढ़ापे में मनुष्य का मन ईश्वर की ओर नहीं झुकता। बाल्यावस्था में बिना परिश्रम उधर झुकाया जा सकता है।

[२५२] प्रश्न—आप लड़कों से इतना प्रेम क्यों रखते हैं?

उत्तर—बालक सोलहो आने अपने मनमें मगन रहता है। जब उसका विवाह होता है तब आठ आने स्त्री में बँट जाता है। लड़के होने पर बारह आने चला जाता है, फिर बाकी चार आने माता-पिता, आदर-मान, अहङ्कार और छैल-चिकनाई में धीरे धीरे बँट जाता है। इस कारण मनुष्य का मन बाल्यावस्था से यदि ईश्वर की ओर लगता है तो वह ईश्वर को पा सकता है।

जो जगत् के कामों में फँसे हुए हैं, उनको भजन करने का मौक़ा कम मिल सकता है

[२५३] किसी ने किसी साधु से पूछा—"जब मेरा बेटा हरिश्चन्द्र बड़ा हो जायगा, तब मैं उसका विवाह करके उसे घर का बोझा सौंप संसार से मन हटा कर योग साधन करूंगा, इसमें आप की क्या राय है?" इस प्रश्न को सुन कर साधु बोला—"तुम्हारी योग साधने की इच्छा कभी पूरी न होगी, क्योंकि पुत्र के विवाह हो जाने पर तुम्हारी इच्छा कहेगी कि हरिश्चन्द्र मेरा प्यारा है इसे न छोडूंगा। कुछ दिन पीछे फिर यह इच्छा होगी कि हरिश्चन्द्र के भी लड़का हो और उसका विवाह करूँ। ऐसे ही बराबर इच्छा बढ़ती जायगी और उसका कभी भी अंत न होगा।

[२५४] जिस सरसों को फेंककर भूत उतारते हो, यदि उसी के भीतर भूत घुसा हो तो वह सरसों भूत कैसे छुड़ा सकेगी? ऐसे ही जिस मन से साधन करना चाहते हो, यदि वही विषयी है तो तुम्हारी साधना कैसे सिद्ध होगी?

संसार में लिप्त पुरुष धर्म के विषय में भी कपटी होते हैं

[२५५] स्प्रिङ्ग लगी गद्दी पर बैठने से गद्दी लचकती है और उससे उठने पर वह फिर उठ जाती है। इसी प्रकार संसारी मनुष्य

जब धर्म की चर्चा सुनता है, तब थोड़ी देर के लिए तो धार्मिक बन जाता है, पर संसार में घुसते ही फिर वह सब भूल कर ज्यों का त्यों हो जाता है ।

× × × ×

[२५६] लोहार की दुकान में लोहा जब तक भट्टी में रहता है तब तक लाल रहता है, पर बाहर निकालते ही वह काला पड़ जाता है। ऐसे ही संसारी मनुष्य धर्म मंदिर में अथवा धार्मिक के संग में जब तक रहता है तब तक धार्मिक बना रहता है, पर वहाँ से दूर होते ही फिर धर्मभाव भूल जाता है ।

[२५७] दुनियावी सुख-चैन पाने की ग़रज से संसारी लोग बहुत धर्म कर्म करते हैं, परन्तु विपद्, दुःख, दरिद्रता और मृत्यु का समय आने से उन लोगों को धर्म की सारी बात भूल जाती है। टुइयाँ (छोटी सुग्गी) सारे दिन राधे-कृष्ण राधे-कृष्ण पढ़ती है, परन्तु बिल्ली आकर जब उसकी गर्दन पकड़ती है, तब वह राधेकृष्ण राधेकृष्ण भूलकर टें टें करने लगती है।

[२५८] मोरी में जल जैसे एक ओर से आता है और दूसरी ओर से निकल जाता है, वैसे ही संसारी जीव एक कान से धर्म-वार्ता सुनता है और दूसरे कान से उसे निकाल देता है ।

[२५९] जैसे पत्थर में कील नहीं धँसती पर मिट्टी में घुस जाती है। वैसे ही साधु का उपदेश दुनियावी जीवों के मन में नहीं

बैठता, पर श्रद्धालु मनुष्यों के चित्त में अनायास प्रवेश कर जाता है * ।

[२६०] जैसे कबूतर के बच्चे के गले में हाथ लगाने से जान पड़ता है कि गले में दाना है । वैसे ही दुनियावी लोगों से बात करने से जान पड़ता है कि इसके मनमें विषय-वासना भरी हुई है। विषय ही उसे अच्छा लगता है और धर्म नहीं अच्छा लगता ।

[२६१] दुनियाबी आदमी न आप हरिनाम सुनता है, न औरों को सुनने देता है, वरन् भक्तों को उपासना करते देख उनकी हँसी करता है।

[२६२] जैसे बालक को रमण का सुख नहीं समझाया जा सकता। वैसे ही विषय में फँसे हुए दुनियावी जीव को ब्रह्मानन्द का परिचय नहीं दिया जा सकता ।

[२६३] घड़ियाल के देह में हथियार मारने से हथियार उलटा उछल आता है और घड़ियाल को चोट नहीं लगती । ऐसे ही दुनियाबी जीव को चाहे कितना ही धर्म सिखाओ, पर उसके चित्त में कुछ भी नहीं चुभता ।

---

* व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिका ।

—गीता

बुरे कर्म करने वाले का हृदय

[२६४] दुष्टों का मन कुत्ते की दुम की तरह है। चाहे कुछ भी करो कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी बनी रहती है। वैसे ही दुष्टों का मन कदापि सीधा नहीं होता।

[२६५] "तजो मन हरि विमुखन को सङ्ग।

पाहन पतित बाण नहिं भेदत, रीतो करत निषङ्ग।" *

[२६६] चलनी सारभाग को बाहर निकाल कर असार को भीतर रख लेती है, ऐसे ही दुनियावी लोग भी सत् को छोड़कर असत् को ग्रहण कर लेते हैं।

[२६७] चलनी से उल्टी सूप की दशा है। वह सारांश को रख कर असार को बाहर फेंक देता है, ऐसे ही अच्छे लोग भले को लेकर बुरे को छोड़ देते हैं।

[२६८] जब मन बुरी वासना में लगा रहता है तब वह मानों कसाई टोले में निवास करता है।

[२६९] दूसरों के मैले कपड़े अपने घर में इकट्ठे करके धोबी मानों वस्त्रपति बन जाता है, परन्तु कपड़े साफ़ करने के बाद ही उसका घर कपड़ों से ख़ाली हो जाता है। यही दृष्टान्त देकर परमहंसदेव उपदेश किया करते थे कि "धोबी की तरह मालिक नहीं बनना चाहिये।"

---

* सूरदास।

धन और जन में लिपटे हुए लोगों का मन

[२७०] पक्की हँड़ियाँ यदि टूट जाये तो फिर नहीं जुड़ सकती। कच्ची हाँडी टूटे तो वह फिर से जोड़ी जा सकती है। ऐसे ही जिसके भीतर विषय-वासना थोड़ी है वह अपने मन को ईश्वर की ओर लगा सकता है, परन्तु विषय-वासना में जिसका मन पग गया है, वह किसी प्रकार से भी ईश्वर में अपना मन नहीं लगा सकता।

[२७१] कच्ची मिट्टी से मूर्ति बन सकती है और पक्की मिट्टी से नहीं बन सकती। ऐसे ही जिसका मन भोग-विलास में पग गया हो, वह भगवद्भजन आदि में मन नहीं लगा सकता।

[२७२] चाहे कितना ही घिसो भींगी दियासलाई न जलेगी, हाँ उसमें से धुआँ भर उठेगा, परन्तु सूखी दियासलाई घिसते ही जल उठती है। भक्त लोग सूखी दियासलाई के समान ही हैं, क्योंकि भगवच्चर्चा होते ही उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आते हैं, परन्तु कामिनी-कनक में फँसे हुए मनुष्यों का मन हजारों हरिचर्चा से भी भजन के लिये उद्दीप्त नहीं होता।

[२७३] गीली मिट्टी में छाप पड़ सकती है, परन्तु पत्थर में नहीं पड़ती। ऐसे ही ईश्वर की कथा भक्त के मन में जम सकती है। दुनियाबी आदमियों के मन में नहीं बैठती, परन्तु शिला में जैसे टांकी से लेख लिखा जाता है, वैसे ही दुनियाबी लोगों का भी अन्तःकरण दुःख पाकर परमेश्वर की ओर कभी कभी लग जाता है।

घोर संसारियों का हृदय ईश्वर की कृपा से मौक़ा पाकर भी कम पलटता है

[२७४] मलयाचल की हवा बह कर ठोस पेड़ को चन्दन सा सुगन्धित कर देता है, परन्तु केला, बाँस इत्यादि तुच्छ पोले पेड़ उससे सुगन्धित नहीं होते * । ऐसे ही जिन मनुष्यों में सार है वे तो भगवत् की कृपा से क्षण भर में अनीश्वर भाव को त्याग कर ईश्वरभाव से पूर्ण हो जाते हैं, पर संसारी मनुष्यों के ऊपर उसका कुछ असर नहीं होता ।

[२७५] प्रश्न—ईश्वर में मन एकाग्र क्यों नहीं लगा रहता ?

उत्तर—'देखो ! विष्टा पर बैठने वाली मक्खी कभी कभी हलवाई की दूकान में मिठाई पर बैठती है । उसी समय यदि कोई मेहतरानी विष्टा की टोकनी लिये उधर से जाती है तो वह मक्खी मिठाई छोड़ कर उस पर जा बैठती है, परन्तु शहद की मक्खी मधुपान में मत्त रहती है । विषयी मनुष्यों का मन गुबरैले कीड़े के समान है । गुबरैला गोबरही में रहता है और कहीं उसे अच्छा नहीं लगता । उसे यदि कमल में रख दो तो वह छटपटा कर मर जाता है, उसी प्रकार विषयी मनुष्यों की भी दशा है । विषय छोड़ उन्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता ।'

---

* वेणु करील श्रीखण्ड वसन्तहिं, दूषण मृषा लगावैं ।
सार रहित हत भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहहु किमि पावैं ॥
—विनय पत्रिका

[२७६] चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द से कहा—'भाई! मैं जीवों को प्राण से प्यार करता हूँ, तो भी उनसे कुछ किया नहीं होता।' नित्यानन्द ने कहा—'जीव स्त्रीसङ्ग करते हैं। अतः अब्रह्मचर्य से उनमें आध्यात्मिक कार्य करने की कुछ शक्ति नहीं रह जाती।' महाप्रभु ने कहा—'सच है, सुनो भाई नित्यानन्दजी! संसारी जीव संसार के बंधन से छुटकारा कभी पा नहीं सकता।'

[२७७] गुरु, कृष्ण और वैष्णव तीनों की कृपा होते हुए भी हाय केवल एक की उन्मुखता बिना जीव का नाश हुआ, क्योंकि मन के चञ्चल रहने (विषय में मन के लिप्त रहने) से उसकी भगवान की ओर उन्मुखता हुए बिना साधु की सङ्गति और उपदेश दोनों निष्फल हुए।

संसारियों से धर्म-प्रचार

[२७८] सब गीदड़ों की बोल एक ही प्रकार की होती है। ऐसे ही दुनियावी ज्ञानियों का धर्मप्रचार और धर्मोपदेश वस्तुतः एक ही है।

[२७९] गिद्ध बहुत ऊपर उड़ता है पर उसकी दृष्टि हड्डी फेंकने के स्थान की ओर रहती है। ऐसे ही पुस्तक पढ़ कर अनेक पण्डित बड़े ज्ञान की बातें छांटते हैं, पर उनके मन के भीतर चावल, केला, धन, दक्षिणा और आदर इत्यादि के पाने की इच्छा जमी रहती है।

[२८०] कौआ बड़ा चतुर होता है और कुदकना, फुदकना

तथा उचकना बहुत जानता है, पर जन्म भर विष्ठा खाते ही मरता है। फलतः अधिक चतुराई अथवा धोखेबाज़ी का नतीजा अक्सर कौए की तरह ही होता है।

संसारी मनुष्य का मन

[२८१] मक्खी जैसे कभी फोड़े पर बैठती है, तो कभी देवता के नैवेद्य पर बैठती है। ऐसी ही संसारी मनुष्य का मन कभी धर्म चर्चा करने में लगता है और कभी स्त्री तथा सोने के विषय में बिल्कुल मग्न हो जाता है।

[२८२] हज़ारों ठोकरें खाने पर भी संसार में लिपटे हुए लोग कनक कामिनी की इच्छा से मन को खींचकर ईश्वर की ओर नहीं लगा सकते।

[२८३] एक सेर दूध में एक छटांक पानी मिला रहे तो थोड़ी आँच देने से उसकी खीर पका सकते हैं, पर उसमें तीन पाव पानी मिला रहे तो खीर शीघ्र न पकेगी। बहुत देर तक उसे आँच पर चढ़ाये रखना पड़ेगा और अन्त में खीर शायद न भी पके। वैसे ही लड़कों के मन में विषय-वासना बहुत थोड़ी होती है, इस कारण ईश्वर की ओर वे सहज में लगाये जा सकते हैं, पर बूढ़ों का मन विषय-वासना में डूबा रहने से उनमें ईश्वर शीघ्र नहीं आ पाता।

संसारी मनुष्य इन्द्रिय सुखों को विशेष चाहते हैं

[२८४] विषयी लोगों को ब्रह्मानन्द के बजाय विषयानन्द आदि प्रिय लगता है। मथुरा बाबू ने परमहंसजी से अपनी भाव-समाधि लगने की प्रार्थना की। स्वामीजी के अनुग्रह से उन्हें ऐसी भाव-समाधि लगी कि कोई डाक्टर उनको समाधि छुड़ा न सका। कोई कहता था—भट्टाचार्य (परमहंस) के समान इनको भी समाधि लगी है। निदान उनकी वह समाधि पन्द्रह दिन तक लगी थी।

जब परमहंसजी ने जाकर उनके ऊपर अपना हाथ फेरा तब समाधि छूटी। समाधि से जागकर मथुरा बाबू बोले—बाबू जी ! मैं इस भावावस्था का अधिकारी नहीं हूँ। यदि मैं समाधि लगाऊँ तो मेरे बाल-बच्चे धन-सम्पत्ति कैसे संभाल सकेंगे।

[२८५] मक्खन उठाकर यदि दही की हंड़िया में रक्खा जाय तो उससे गन्ध निकलता है, परन्तु यदि वह कोरी नई हंड़िया में रक्खा जाय तो गन्ध नहीं निकलता। तात्पर्य यह है कि संसार के बीच में रह कर साधन करके सिद्ध होकर जो संसार ही में रहते हैं वे थोड़े मलिन हो जाते हैं, परन्तु जो संसार को छोड़ कर रहते हैं वे अच्छे रहते हैं।

[२८६] मनुष्य का मन सरसों की पोटली की तरह है। सरसों की पोटली के एक बार खुलने से सरसों छितर-बितर हो जाय तो बीनना कठिन है। ऐसे ही एक बार भी संसार में मनुष्य का मन फैलने पर पुनः उसे स्थिर करना कठिन है। लड़कों का मन संसार

में फसने से पहिले ईश्वर में लगाया जाय तो शीघ्र लगता है, पर बुड्ढों का मन संसार में लिप्त रहने से ईश्वर की ओर शीघ्र नहीं लगता।

[२८७] जो पलरा भारी होता है वह झुक जाता है, परन्तु जो हलका होता है वह ऊपर उठ आता है। विषय में आसक्त लोगों की अधोगति होती है और विषय से अनासक्ति रखने वाले लोगों की उन्नति होती है।

[२८८] संसार आँवले के फल की तरह है उसमें गूदा नहीं होता, गुठली और छिलका ही होता है। उसके खाने से अमलचुक्की आती है और व्याधि उत्पन्न होती है। संसार भी ठीक इसी प्रकार का है।

[२८९] संसारी मनुष्यों की मुक्ति का उपाय सिर्फ़ त्याग ही है। जैसे कुशियारे कीड़े खुद कोश बनाकर उसमें फंस जाते हैं, वैसे ही संसारी जीव स्वयम् घर वार बनाकर उसमें आप ही बँध जाते हैं। इसके विपरीत तितली जैसे खोली तोड़ के उड़ भागती है, वैसे ही विवेक-वैराग्य सम्पन्न मुमुक्षु घर से निकल जाता है।

[२९०] होशियार रहकर जागते रहने से घर में चोरी नहीं होती।

[२९१] कागज़ में तेल लगने से उस पर लिखते नहीं बनता, वैसे ही स्त्री और सोनारूपी माया का स्नेह (तेल) लगने से जीव से साधन करते नहीं बनता, परन्तु तेल लगे हुए कागज़ पर खड़िया मिट्टी घिस देने से उस पर लिखते बनता है। ऐसे ही जीव में स्त्री

और सोनारूपी माया का स्नेह लगा हुआ है। उस पर त्यागरूप खड़िया लगाने से फिर साधन करते बनता है।

[२९२] बन्दर का बच्चा अपनी माँ के पेट से चिपका रहता है, पर बिलार का बच्चा पड़ा पड़ा 'मेऔं' 'मेऔं' करता रहता है। बन्दर का बच्चा माँ को हाथ से छोड़े तो गिर जाय, क्योंकि वह मा को पकड़े रहता है। बिल्ली अपने बच्चे को मुंह में लिये रहती है इससे उसे गिरने का डर नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि बन्दर का बच्चा पुरुषार्थ करता है, पर बिल्ली का बच्चा माता पर भरोसा करके रहता है।

[२९३] बोदकर नाम की एक तरह की मकड़ी होती है। उसके काटने से घाव पर पहिले हरदी का पत्ता लगाकर उसके विष का बल घटाना होता है फिर पीछे दवा लगाई जाती है। इसी प्रकार कामिनी काञ्चन रूप मकड़ी जीव को पहिले बाँध रखती है। वैराग्य से त्याग सन्यास धारण करना चाहिये, पीछे भजन साधन करना चाहिये।

[२९४] जिस कोठरी में ईश्वर है उसके किवाड़ खोलने की कुञ्जी उलटी घुमानी पड़ती है। इसका भावार्थ यह है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिये इस जगत् को वैराग्य से त्यागना पड़ता है।

[२९५] प्रश्न—संसारी मनुष्य सब कुछ छोड़कर भगवान् के निकट क्यों नहीं चले जाते ?

उत्तर—वेश-भूषा धारण करके रङ्ग-भूमि में उतर कर कोई तुरन्त वेश को उतार नहीं देता। ऐसे ही संसारी मनुष्य को थोड़ी

देर खेल खेल लेने दो। उसके बाद वह अपने वेश को आप उतार फेंकेगा।

ईश्वर और संसार का किस तरह मेल हो

[२९६] प्रश्न—संसार और ईश्वर दोनों का एक साथ कैसे सेवन किया जा सकता है ?

उत्तर—एक स्त्री एक हाथ से ढेंकी में चिउड़ा चलाती है और दूसरे हाथ से बच्चे को गोद में लेकर दूध पिलाती है। मुंह से चिउड़े का हिसाब लगाती है। तात्पर्य यह है कि वह अनेक काम साथ करती है, पर तो भी सावधान रहती है कि उसका हाथ ढेंकी से न कुचल जाय। ऐसे ही संसार में रहकर सब काम करते रहने पर भी ईश्वर के पथ से न हटना चाहिये।

[२९७] घड़ियाल को जल के ऊपर तैरना बहुत अच्छा लगता है, पर वह मनुष्य के डर से पानी के नीचे ही रहता है। तो भी अवसर पाने पर हुसफुस करता हुआ कभी कभी ऊपर आ जाता है। हे संसारी जीव ! यह हम जानते हैं कि सच्चिदानन्दरूप समुद्र में तू वास करना चाहता है परन्तु क्या करें ? एक साथ स्त्री पुत्रादि ने तुझको डुबा रक्खा है फिर भी बीच बीच में ईश्वर का नाम लेता रह। ईश्वर से व्यग्रता पूर्वक प्रार्थना कर और अपना दुःख निवेदन कर, वह अवसर पाकर तेरा निस्तार करेगा।

[२६८] शव-सिद्धि करने अर्थात् मुरदे के जगाने में मदिरा और चना पास रखना पड़ता है। साधन करते करते जब मुर्दा किसी समय मुख खोलता है, तब उसके मुख में चना और दारू डालने से वह शान्त हो जाता है, पर यदि उसे चना और दारू न मिले तो साधक के साधन में वह हानि करता है। संसार में रह कर साधन करना चाहो तो संसार चलाने का व्यय इत्यादि पहिले ठीक करलो तब बैठो, क्योंकि यदि ऐसा न करोगे तो साधन में विघ्न पड़ेगा।

[२६६] बाउल * साधु जैसे दो हाथ से दो प्रकार के बाजे बजाता और गाता है। हे संसारी जीव ! तू भी हाथ से अपना काम कर, पर मुंह से ईश्वर का नाम लेता रह।

[३००] बुरे आचरण वाली स्त्री, माता-पिता आदि परिवार के बीच रहकर घर के सब काम धन्धे किया करती है, पर उसका मन अपने यार पर लगा रहता है। हे संसारी मनुष्यो! ऐसे ही माता-पिता आदि परिवार के बीच काम करते हुये भी तुम ईश्वर में मन लगाए रहो।

[३०१] धनी के घर में माता के समान लड़के को धाय दूध पिलाती है, पर मन में जानती है कि बालक पर उसका कुछ अधिकार नहीं है, योंही तुम भी लड़कों का पालन-पोषण यत्न पूर्वक करो, किन्तु यह मानते रहो कि उन पर तुम्हारा कुछ वश नहीं है।

---

* बाउल बंगाल में एक प्रकार के साधु होते हैं जो एक साथ गाते, बजाते, नाचते और ताल देते हैं।

इन्द्रियों को कैसे जीतें

[३०२] एक साधक ने काम सम्बन्धी वार्त्तालाप के समय परमहंस जी से पूछा—"महात्मा, मैं इतना धर्म-चिंतन करता हूँ पर तौ भी मेरे मन में कुत्सित भाव क्यों उठते हैं ?" परमहंस जी ने कहा—"एक मनुष्य ने एक कुत्ता पाला था, जिसको वह सदा अपने साथ रखता और बड़ा प्यार करता था। कभी उसे गोद में लेता था, कभी उसके मुँह पर मुंह रख कर बैठता था। थोड़े दिन के बाद एक विद्वान् ने उसे ऐसा करते देख झिड़क कर कहा कि कुत्ते का इतना आदर न करना चाहिये, यह अबोध पशु है। किसी दिन इतने आदर के कारण तुमको काट खायगा। उसकी समझ में विद्वान् की यह बात आगई और कुत्ते को उसने फेंक दिया और प्रतिज्ञा की कि अब उसे गोद में कभी न लूंगा, परन्तु कुत्ते ने उसके उस भाव को न समझा। वह अभ्यासानुसार पहिले ही की तरह बार बार स्वामी की गोद में चढ़ने का यत्न करता, परन्तु स्वामी मार कर भगा देता था। योंही कुछ दिन मार खाते खाते उस कुत्ते ने स्वामी की गोद में चढ़ना छोड़ दिया। हे जीवो ! तुम लोगों की भी यही दशा है। बहुत दिनों से जिस कुत्ते को आदर करके मुंह लगा रखा था वह अब हटाने पर भी एकाएक अलग नहीं हो सकेगा, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। तथापि कुत्ता तुम्हारे पास आवे तो उसको हटा देना तुम्हारा कर्तव्य है। कुछ दिन में वह अपने आप दूर भाग जायगा।"

[३०३] किसी ने पूछा कि काम, क्रोध आदि रागों को कैसे जीतना चाहिये ? परमहंसजी ने कहा कि जब तक काम क्रोधादि राग स्थूल विषयों में लगाये जाते हैं तब तक वे बड़े शत्रु हैं, लेकिन जब ये राग ईश्वर विषय में लगाये जाते हैं तो वे बड़े मित्र हो जाते हैं, क्योंकि वे ईश्वर के पास पहुँचा देते हैं। पार्थिव काम को पार्थिव विषयों से छुड़ा कर ईश्वर विषय में लगाना चाहिये। मनुष्य पर क्रोध करने के बजाय ईश्वर पर करो कि वह तुम्हारे सन्मुख प्रकाश क्यों नहीं प्रकट करता। सब रागों का ईश्वर के प्रति उत्कर्ष करना ही हितकर होता है।

[३०४] प्रश्न—मनुष्य की वासना कैसे दूर होती है ?

उत्तर—फल लगने पर जैसे पुष्प स्वयं गिर जाता है उसी प्रकार देवभाव बढ़ने से मनुष्यपन दूर होता है।

[३०५] प्रश्न—क्या पुस्तक पढ़ने से भक्ति प्राप्त होती है ?

उत्तर—पञ्चाङ्ग में लिखा रहता है कि बीस अंश वृष्टि होगी, पर यदि पञ्चाङ्ग को निचोड़ो तो उसमें से एक बूंद भी जल न निकलेगा। ऐसे ही पुस्तकों में भी धर्म बहुत लिखा हुआ है, पर केवल पढ़ने से धर्म नहीं होता। साधन करने से धर्म होता है, अतः साधन ही मुख्य है।

[३०६] दस बार 'गीता गीता' का नाम उच्चारण करने से अर्थ पाठ होने लगता है, तथापि 'गीता गीता' दस बार पढ़ चलो तो गी, तागी, तागी, तागी इस प्रकार से तागी (त्यागी) रह जाता है।

उसका अर्थ यह है कि हे विषयी ! विषय सुख छोड़कर अपना मन ईश्वर में लगा अर्थात् त्यागी बन।

[३०७] मैदान का पानी किसी काम में नहीं आता, वह ग्राम में सूख जाता है। ऐसे ही पापी मनुष्य भी ईश्वर को आत्म-समर्पण कर परतन्त्र हो, जब उसकी दया का पात्र हो जाता है तब आप पवित्र हो जाता है।

[३०८] प्रश्न—अहंकार का नाश कैसे हो ?

उत्तर—अहंकार की तीन बातें हैं (१) धान कूटते समय बीच बीच में देखना पड़ता है कि धान ठीक कूटा जा रहा है या नहीं, यदि भूसी नहीं निकलती है तो फिर धान को कूटना पड़ता है (२) तोलते समय तराजू को देखना पड़ता है कि पलड़े ठीक हुए या नहीं, यदि ठीक नहीं हुए तो उनके ठीक होने तक देखना पड़ता है (३) परमहंसदेव आपही अपने को गालियां देकर देखते हैं कि अहंकार से वह बुरी लगती है कि नहीं, वे विवेक से विचार कर देखते हैं कि यह शरीर क्या है ? शरीर हड्डियों का बना लोहू, पीब, चाम की टोकनी है, इसके लिये इतना अहंकार क्यों ? टोकनी की विष्टा को तो मेहतर एक बार उठा ले जाता है, पर शरीर रूपी टोकनी में तो प्रतिक्षण विष्टा भरा रहता है। उस पर इतना अहंकार क्यों ?

ब्रह्मज्ञान की मुक्तिदायिका शक्ति

[३०९] हाथ में तेल लगाकर कटहल का फल चीरना पड़ता है, ऐसे ही मनुष्य को चाहिये कि ज्ञान और भक्ति रूपी तेल लगाकर संसार के कार्य करे।

[३१०] हाथ में तेल लगाके कटहल का फल चीरने से हाथ में उसका लासा नहीं लगता। वैसे ही ज्ञान प्राप्त होने पर संसार में रहकर भी मन में स्त्री और सोने की मलिनता नहीं लग पाती।

[३११] अद्वैत ज्ञान को टेंट में बांध ले फिर जो चाहे कर, तात्पर्य यह है कि जिसका अद्वैत ज्ञान पक्का हो चुका है उसे फिर कोई दोष लग नहीं सकता और न उससे कोई बुरा काम ही होता है।

पहिले ईश्वर की प्राप्ति करो पीछे संसार का सेवन करो

[३१२] लड़के जैसे खूंटी पकड़ कर दनादन घूमते हैं और गिरने से नहीं डरते। इसी प्रकार से संसार में ईश्वर का आश्रय लेकर काम करो तो कभी कोई खतरा नहीं रहेगा। किसी से परमहंस जी बोले, पहिले संसारी हो चुके हो तब भगवान को पाने के लिये आये हो। पहिले परमेश्वर को प्राप्त करके पीछे संसारी होते तो अच्छा होता।

[३१३] पछाँह में स्त्रियाँ अपने सिर पर एक साथ तर ऊपर

चार पांच गगरी रखकर रास्ते में सखियों के साथ बात चीत करती सुनती चली जाती हैं, पर उनका मन गागरों पर लगा रहता है कि कोई गिर न पड़े। ऐसे ही धर्म मार्ग में यात्रियों को सावधान रहना चाहिये जिससे धर्म-पथ से विचलित न हों।

[३१४] एक किसान ने दिन भर ईख का खेत सींचा, पर शाम को उसने देखा तो एक बूंद पानी भी खेत में न गया। कारण यह था कि कुछ दूर पर अनेक गड्ढे थे और उन्हीं में सारा जल चला जाता था। इसी तरह जो आदमी संसारी विषय-वासना मान और सुख-विलास चाहता हुआ भजन करता है उसकी हालत उस किसान की तरह होती है। क्योंकि जन्म भर वह निरन्तर भजन करके भी अन्त में वासना रूपी छिद्र के द्वारा उसके भजन का फल व्यर्थ निकल जाता है। वह ज़रा भी अपनी उन्नत नहीं कर पाता।

[३१५] जो अपने मनके भाव को छिपाता है वह सिद्धि नहीं पाता।

[३१६] मन का विचार और मुख का वचन दोनों को एक करना ठीक साधन है। मुंह में कहोगे कि ईश्वर हमारा सब कुछ है, पर मन में विषय को ही अपना सब कुछ मानोगे तो सब साधन व्यर्थ जायगा।

[३१७] पानी में नाव रहती है, पर नाव में पानी का रहना नहीं हो सकता। साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं है, पर साधक के मन में संसार के होने से हानि है।

[३१८] घड़े की पेंदी में छेद हो तो उससे सब जल बह जाता

है, ऐसे ही साधक के मन में थोड़ी सी भी विषय-वासना रहे तो सब साधन व्यर्थ जाता है। जो संसारी वस्तु की कामना रखता है वह भक्त कैसा?

[३१६] मनुष्य का शरीर ही मानों हाँड़ी है। उसमें मन, बुद्धि और इन्द्रिय मानों जल, चावल और आलू हैं। हाँड़ी में जल, चावल और आलू डाल कर नीचे अग्नि जलाने से वे तीनों गरम हो जाते हैं और उनमें हाथ डालने से हाथ जल जाता है, पर वह दाह-शक्ति उन तीनों में से एक में भी नहीं है किन्तु अग्नि में है। इसी तरह मनुष्य के शरीर के भीतर ब्रह्म-शक्ति जब तक बनी रहती है तब तक मनुष्य का मन, बुद्धि और इन्द्रिय चैतन्य कार्य करते हैं, पर उस शक्ति का जब अन्तर्धान हो जाता है तब मन, बुद्धि और आँख, नाक, कान इत्यादि कार्य नहीं करते।

साधक को संसारी मनुष्यों से मिलना न चाहिये

[३२०] जल में दूध मिलाने से दोनों मिल जाते हैं फिर अलग नहीं होते। इसी प्रकार नये साधक सब प्रकार के संसारी लोगों से बिना रोक-टोक मेल रख कर अपना धर्म साधन जब नाश कर देते हैं, तब उनको पूर्ववत् न श्रद्धा न भक्ति और न उत्साह रहता है। धीरे धीरे वे सब के सब बिना जाने निकल जाते हैं।

[३२१] मक्खन निकाल कर जल की हँड़िया में रखने से एका-एक बिगड़ता नहीं, पर दही की हांड़ी में रखने से बिगड़ जाता है।

इसी तरह सिद्ध होने पर संसार में रहने से मलिनता आती है, पर बाहर चले जाने से बिलकुल सफ़ाई रहती है।

[३२२] काजल की कोठरी में कितना ही होशियार आदमी जाये, उसे काजल की लीक ज़रूर लगती है। इसी प्रकार जवान स्त्री के साथ रह कर चाहे मनुष्य कितना ही सावधान क्यों न हो उसका कामोद्दीपन ज़रूर होता है।

दुर्जनों के संसर्ग से बचो

[३२३] यह सच है कि बाघ में भी ईश्वर रहता है, पर बाघ के सामने नहीं जाना चाहिये। ऐसे ही दुष्ट मनुष्यों में भी ईश्वर रहता है, पर दुष्टों का सङ्ग खराब ही होता है।

[३२४] सिद्धि* के नाम से परमहंस देव बहुत रंजीदा होते थे। कहीं वे सुनते कि कोई साधक किसी सिद्ध के निकट सिद्धि के लिये आता जाता है। तो वे उसे यह कहकर मना करते थे कि उस सिद्ध के पास जाना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर के पादपद्म से मनुष्य दूर हटकर सिद्धि लाभ की वासना में फँस जाता है।

[३२५] छोटे छोटे पेड़ों को पहिले थाला बाँधकर बचाना

---

* सिद्धि जैसे पिशाच सिद्धि, योगिनी सिद्धि, बेताल सिद्धि इत्यादि। सिद्धि शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।

पड़ता है। नहीं तो गऊ, बकरी आदि आकर चर जावें, परन्तु जब वृक्ष बढ़ जाता है तब उनका भय नहीं रहता। उस समय सैकड़ों भेड़ और गऊ आकर उसके नीचे विश्राम लेती हैं और उसके पत्तों से अपने पेट भरती हैं। साधना के पहिले दुष्टों की संगति और संसारी बुद्धि से बचना चाहिये। क्योंकि ऐसा न करने से धर्म-साधन निष्फल हो जाता है, परन्तु एक बार साधन में सिद्धि होने पर फिर भय नहीं रहता। सहस्रों दुष्टों की संगति उस समय कुछ नहीं बिगाड़ सकती, वरन् बहुतेरे लोग तुम्हारे पास आकर संतुष्ट होते हैं।

साधक को निर्जन एकान्त स्थान में रहना चाहिये

[३२६] कोई भक्त परमहंस देव जी के पास एक दिन आया। उन्होंने उससे कहा—"कल तेरे केशवचन्द्र सेन आये थे और उनके साथ बहुत से लोग थे। वे बड़ के पेड़ की छाया में बैठ कर बहुत बात चीत करते थे। कामिनी और कांञ्चन त्याग न करने से कुछ भी सिद्धि नहीं होगी।" यह बात सुन कर उनमें से एक मनुष्य बोला—"क्यों महाराज ! जनक राजा ने तो त्याग नहीं किया ?" स्वामीजी ने कहा—"हाँ, युग युग से जनक राजा का नाम आज तक चला आता है कि उन्हों ने निर्लिप्त भाव से संसार सेवन किया था,

परन्तु अब देख रहे हैं कि आजकल घर घर में मानों जनक राजा ही विराजमान हैं।"

[३२७] जो लोग भजन करने पर हँसते हैं या धर्म और धर्मात्मा की निन्दा करते हैं, उनसे साधन के समय सर्वथा अलग रहना चाहिये।

[३२८] हाथी स्नान करता है तो मल मल कर शरीर निर्मल करता है, पर बाहर निकल कर फिर धूलि से मैला कर लेता है। शरीर धोकर निकलते ही यदि वह घर के भीतर रक्खा जावे तो शरीर मैला न करने पावेगा। ऐसे ही संसार में चाहे जितनी पवित्रता करो पर फिर मैले हो जाओगे। मन को पवित्र करके ईश्वर में लगा देने से तुम पवित्र हो जाओगे, पर संसार में जो शरीर से उच्छृङ्खल रहोगे तो मैले हो जाओगे।

जिसका मन शुद्ध होता है वह ईश्वर को प्राप्त करता है

[३२९] जैसे दर्पण मलिन होने से उसमें मुख की छाया नहीं पड़ती, वैसे ही मन मलिन होने से उसमें ईश्वर की झाँकी नहीं होती। हाँ, मैल पोंछ देने से दर्पण में जैसे मुख दिखलाई पड़ता है, वैसे ही मन के निर्मल होने पर परमेश्वर दर्शन देता है।

[३३०] संसार में रह कर जो साधना कर सकते हैं वे सच्चे पराक्रमी साधु हैं।

[३३१] तैरना सीखने में बहुत दिन हाथ-पाँव इधर उधर फेंकने पड़ते हैं पर तैरना तुरन्त ही नहीं आ जाता। ऐसे ही ब्रह्मसागर में मज्जन सीखने के लिये बहुत बार गिरना पड़ता है, इसलिये एकाएक ब्रह्मसागर में नहीं तैर सकते।

[३३२] बछड़ा पहिले बीसों बार गिरता है तब खड़ा हो सकता है। ऐसे ही साधन करने में भी बार बार गिरकर उठने पर सिद्धि का दर्शन होता है।

प्रकृति धार्मिक

[३३३] "एकान्त में भी भगवान मुझे देखता है", यह विचार कर जो लोग पाप नहीं करते वे ही यथार्थ में धार्मिक हैं। सूने मैदान में तरुणी सुन्दरी कामिनी को देख कर धर्म के भय से जो उसको कुदृष्टि से नहीं देखते वे ही सच्चे धार्मिक हैं। जो सब के सामने केवल दिखाने को धर्माचरण करते हैं वे प्रकृति धार्मिक नहीं हैं। सूने अँधेरे में जहां कोई नहीं देखता वहाँ ईश्वर और अपने आत्मा पर दृष्टि रख कर धर्मानुष्ठान करना वास्तविक धर्म का लक्षण है।

[३३४] जैसे कांच पर पारे के लेप से दर्पण बनता है और उसमें देखने से मुख दिखलाई देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य रखने से अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रकाश होता है।

[३३५] किया हुआ पाप और खाया हुआ पारा छिपाने से नहीं छिपता।

[३३६] जैसे चकवड़ का साग साग नहीं है, मिश्री की मिठाई में गिनती नहीं है, प्रणव ओंकार (ॐ) अक्षर नहीं है। ऐसे ही भक्ति की कामना कामना नहीं है, क्योंकि ऐसी कामना से उपकार छोड़ किसी का अपकार नहीं होता।

[३३७] प्रश्न—शरीर की ममता कैसे घटती है ?

उत्तर—मनुष्य हाड़-माँस, पीब, लोहू, विष्टा, मूत इत्यादि का ठीकरा है, यदि यह विचार करके घिन करो और मन में वैराग्य लाओ तो शरीर की ममता मिट जाती है।

[३३८] प्रश्न—विषय की चाह कैसे हटे ?

उत्तर—अपरम्पार सच्चिदानन्द ही सुख की राशि है। उस सुख का जो लोग उपभोग करते हैं उन्हें फिर विषय सुख अच्छा नहीं लगता।

[३३९] मेढकी की पूंछ जब गिर जाती है, तब वह मेढक हो जाता है और जल थल दोनों में समान भाव से रहने लगता है। ऐसे ही जीव की अविद्यारूपी पूँछ जब गिर जाती है तो उसकी मुक्ति हो जाती है। उस समय वह संसार में रह कर भी सच्चिदानन्द में निवास कर सकता है।

[३४०] बालू में मिली हुई शक्कर चींटी बालू छोड़ कर चाट लेती है। ऐसे ही साधु सन्त और परमहंस अशुभ को त्याग कर शुभ को संग्रह कर लेते हैं और उनकी यही पहिचान है।

तपस्वी

[३४१] मनुष्य कामिनी और काञ्चन रस में लिप्त हो रहे हैं। विना इस रस के नाश हुए ईश्वर नहीं मिल सकता।

[३४२] लावा भूंजते समय जो चावल चटक कर बाहर गिर जाता है उसमें दाग़ नहीं रहता और जो खपड़े में रह जाता है वह लावा हो जाता है पर दाग़ी रहता है। ऐसे ही साधन करते हुए जो संसार के बाहर हो जाते हैं वे पूरी निष्कलङ्क सिद्धि पाते हैं, परन्तु संसार में रह कर जिन्हें सिद्धि मिलती है, उनमें कुछ न कुछ कलङ्क की रेखा रह जाती है।

[३४३] प्रश्न—आज कल के वैरागी के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—जो पुरुष माता पिता या स्त्री के साथ झगड़ा करके विरक्त होकर घर छोड़ता है उसे आजकल वैरागी कहते हैं। वह दो दिन का विरागी है, जो उसे कहीं नौकरी मिले तो उसका वैराग्य कोसों दूर भाग जाता है और वह फिर वैराग्य छोड़ कर घर आ जाता है।

सच्चे और झूठे साधु

[३४४] वास्तव में जीव भगवान् को चाहता है कि नहीं, यह जानने के लिये भगवान् उसका धन-पुत्रादि नाश कर परीक्षा करते हैं। धन आदि का नाश होने पर भी जो पुरुष धीरज धर कर ईश्वर

के भजन-भाव में स्थिर रहता है वही भाग्यवान् भगवान की प्रसन्नता को प्राप्त करता है।

"जो कोई करे मेरी आशा, करूँ उसका सर्वनाशा।
तिस पर भी यदि करे आशा, पूरण करूँ उसकी अभिलाषा॥"

× × × ×

[३४५] जैसे 'पीतल है या सोना' की परीक्षा कसौटी पर हो जाती है, वैसे ही ईश्वर के समीप सरल अथवा कपटी साधु की परीक्षा विकट परिस्थिति रूपी कसौटी द्वारा हो जाती है।

[३४६] जैसे सर्प से लोग दूर रहते हैं वैसे ही कामिनी के सम्मुख कभी नहीं जाना चाहिये, क्योंकि कामिनी से बढ़ कर लुभाने की दूसरी और कोई वस्तु नहीं है। लालच में पड़कर शिक्षा लेने की अपेक्षा उसके संसर्ग से हटे रहना ही अच्छा है।

[३४७] प्रश्न—संसार का सार क्या है?

उत्तर—ईश्वर, असार कामिनी और काञ्चन है। ईश्वर ही नित्य है, वही थे और वही रहेंगे। कामिनी और काञ्चन था भी नहीं, रहता भी नहीं और रहेगा भी नहीं।

[३४८] पहिले पूरा मन अपना ही रहता है, फिर दो आना भर विद्या-शिक्षा में, आठ आना भर स्त्री में, चार आना भर पुत्र कन्या में और दो आना भर विषय में बँट जाता है। समय पाकर किसी का मन अपना नहीं रहता और वे दूसरे ही के मन से काम किया करते हैं।

[३४९] जिस घर में काल-सर्प का वास रहता है, उस घर

में रहने से सदा मन भयभीत रहता है। वैसे ही संसार भी काल-सर्प है इससे सदा डरते रहना चाहिये।

× × × ×

[३५०] अमली होय धरे जो ध्यान,
होय गृहस्थ बतावे ज्ञान।
योगी होय भोग मन दीन,
यह तीनों कलिमल ठग चीन॥

× × × ×

[३५१] जो एक बार इन्द्रिय सुख का आस्वादन कर चुके हैं उनको बड़ी सावधानी से रहना चाहिये, क्योंकि आँखों से देखने पर और कानों से सुनने पर मन में चञ्चलता आती है। एक बार मन में किसी प्रकार का संस्कार उत्पन्न हो जाने पर उसको वह चिर जीवन तक नहीं भूलता। एक दिन एक बधिया बैल को एक दूसरे बैल पर चढ़ता देख, खोज करने पर मालूम हुआ कि वह जिस समय बधिया किया गया था उससे पूर्व उसको संसर्ग ज्ञान हो गया था।

[३५२] जो साधु होकर जीविकार्थ औषधि बांटे अथवा नशा के लिये मादक पदार्थ खाये, वह साधु नहीं झूठा साधु है उसके साथ न रहना चाहिये।

[३५३] जैसे जूता पहिन कर कटीले रास्ते पर आसानी से चले जाते हैं, वैसे ही तत्वज्ञान रूपी चादर द्वारा संसार में मन संरक्षित रहता है।

[३५४] लाखों में कोई एक सिद्ध होता है। जितने लोग साधन करते हैं वे सब सिद्ध नहीं होते।

जीवों के दशा-भेद

[३५५] बहुत सी मछलियां जाल में फँसती हैं। उनमें से बहुतेरी भागने का कुछ भी यत्न नहीं करतीं। कोई कोई भाग कर प्राण बचाने का प्रयास करती हैं पर भाग नहीं सकतीं। वे मछलियां थोड़ी होती हैं जो जाल फाड़ कर भाग जाती हैं। ऐसे ही इस संसार में भी तीन प्रकार के जीव होते हैं—वद्ध, मुमुक्षु और मुक्त।

[३५६] कच्ची हाँड़ी टूट जाती है तो कुम्हार उसकी मिट्टी से दूसरी हाँड़ी बना लेता है, पर पक्की हाँड़ी टूटने पर उसकी मिट्टी से हाँड़ी नहीं बन सकती। वैसे ही अज्ञान अवस्था में मरने से पुनर्जन्म होता है, पर ज्ञान प्राप्त होने पर मरने से ज्ञानी को पुनर्जन्म नहीं होता।

[३५७] बहुतेरी ऐसी मछलियां होती हैं जिनके शरीर में बहुत से कांटे होते हैं और ऐसी कम होती हैं जिनके एक ही कांटा होता है। ऐसे ही, ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो अधिक पापी हैं। ऐसे कम हैं जो थोड़े पापी हैं।

[३५८] जीव तीन प्रकार के होते हैं (१) वद्ध (२) मुमुक्षु (३) मुक्त, इसके सिवाय नित्य जीव भी हैं। नित्यजीव आचार्य्य का कार्य्य करते हैं।

[३५६] मक्खन सुबह ही निकालना चाहिये क्योंकि दिन चढ़ने पर अच्छा मक्खन नहीं निकलता। ऐसे ही बाल्यावस्था में मनुष्य का मन आसानी से ईश्वर की ओर लगाया जा सकता है, बूढ़ा होने पर नहीं लगता।

[३६०] जैसे भुँजे हुए धान के बीच से पेड़ नहीं उगता, पर कच्चे धान के बीज से अंकुर निकलता है। वैसे ही सिद्ध होकर मरने पर फिर जन्म नहीं होता। हाँ, असिद्धावस्था में मरने पर पुनर्जन्म होता है।

[३६१] प्रकृति के सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के भेद से मनुष्य की प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। *

[३६२] नमक, कपड़ा और पत्थर की पुटली एक साथ समुद्र में फेंक देने से नमक की पुटली तुरन्त जल में गल जायगी। कपड़े की पुटली जल से भीग तो जायगी पर वह जल में गलेगी नहीं। उसे जब चाहो जल से निकाल सकते हो, पर पत्थर की पुटली में जल प्रवेश ही न कर सकेगा। इसी तरह मुक्त पुरुष नमक की पुटली, मुमुक्षु पुरुष कपड़े की पुटली और बद्ध जीव पत्थर की पुटली है।

[३६३] पेड़किया (कचौरी) मैदे की बनती है, पर उसमें पिट्ठी के भराव के भेद से स्वाद में भेद होता है। ऐसे ही मनुष्यों

---

* भगवद्गीता १४ अः पृ० १६; १६ अः १—२४; १७ अः १—२२ और १८ अः ७—१ तथा १८—४० वीं में सत्व, रजस्, तमस् तीनों गुणों का वर्णन है।

की देह समान मात्राओं से बनी है, पर मनकी पवित्रता के तारतम्य के अनुसार वह पवित्र या मैला माना जाता है।

अध्यात्म लाभ हृदय की शुद्धता से होता है

[३६४] जिसका जैसा भाव रहता है उसे वैसा ही फल मिलता है। दो मित्रों ने घूमते घूमते देखा कि कहीं भागवत की कथा होती है। उनमें से एक ने कहा—"चलो भाई! वहाँ चलकर भागवत सुनें।" दूसरा बोला—"नहीं भाई! भागवत सुनके क्या होगा? चलो उतनी देर वेश्या के घर चलकर सुख विलास करें।" पहिले मित्र ने यह बात नहीं मानी, वह जाकर भागवत सुनने लगा। दूसरा वेश्या के घर गया, परन्तु वेश्या के घर में उसको विलास से संतोष न मिला। वह मनमें केवल यही सोचता रहा कि "हाय, मैं यहां क्यों आया? मेरा मित्र वहाँ न जाने कितना भगवद्-गुणानुवाद सुनता होगा?" पहिला जो भागवत सुनने बैठा था उसे कथा अच्छी न लगी। वहां बैठकर वह अपने मनमें यह कहने लगा कि "मैं भी अपने मित्र के साथ क्यों न चला गया। न जाने वह वेश्या के साथ कैसे सुख विलास से समय व्यतीत करता होगा।" अन्त में भागवत सुनने वाले को वेश्या के घर जाने का फल मिला और वेश्या के घर जाने वाले को भागवत् सुनने का फल प्राप्त हुआ।

मन और बुद्धि की शक्ति

[३६५] नहीं नहीं कहने से कुछ हाथ नहीं आता, जो लोग सभी बात में नहीं नहीं करते हैं वे भले मानस नहीं हैं।

[३६६] जैसा तुम्हारा भाव है वैसा फल मिलेगा। भगवान् कल्पवृक्ष के समान हैं। जो जैसा चाहता है उसे वे वैसा ही फल देते हैं। गरीब आदमी का लड़का विद्याभ्यास करके जज होकर अपने मनमें समझता है कि मैं सुखी हूँ। भगवान भी कहते हैं कि तुम जैसे हो वैसे ही बने रहो। तत् पश्चात् जब वह पेन्शन लेकर घर रहने लगता है तब बिचारने लगता है कि "मैंने इस जीवन में क्या किया?" तब भगवान् भी कहते हैं—"हां! ठीक कहते हो तुमने क्या किया?" (अर्थात् कुछ नहीं किया)

[३६७] मूली खाने से मूली के रस की डकार आती है। खीरा खाने से खीरे के रस की डकार आती है। ऐसे ही जिसके मनमें जैसा भाव रहता है वैसा ही प्रकट होता है।

[३६८] एक ज़मींदार किसी का कर्ज मार लेने के इरादे से जान बूझकर पागल बन गया। वैद्य, डाक्टर कोई उसका इलाज करके अच्छा न कर सका। पीछे एक विज्ञ चिकित्सक ने उसे देख कर कहा—"महाशय! आप यह क्या कर रहे हैं? नक़ल करते करते पीछे कहीं असली पागल न हो जाओ, क्योंकि मैं बहुत दिन से देख रहा हूँ कि आप में बहुत सा पागलपन आगया है।" उस वैद्य की यह बात सुनकर उस पुरुष को चैतन्यता हुई और उसने

पागलपन छोड़ दिया। तात्पर्य यह है कि सर्वदा कोई बहाना करने से धीरे-धीरे उसी प्रकार का भाव जीव को प्राप्त हो जाता है।

[३६९] बहुतेरे लोग बनावटी नम्र भाव दिखला कर कहा करते हैं कि 'हम कीटानुकीट हैं।' कीट कीट कहते कहते कुछ दिन के बाद सचमुच वे लोग कीटप्राय हो जाते हैं। मनमें कभी निराश न होना, निराश होने से धर्म के पथ में कभी अधिक आगे नहीं बढ़ सकोगे। 'जिसकी जैसी भावना उसकी वैसी सिद्धि।'

[३७०] कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर मनुष्य अपने मन में कहने लगा—"मैं राजा होऊँ?" वह राजा हो गया। तब उसने माँगा—"एक सुन्दरी पाऊँ।" उसने उसी समय एक सुन्दरी स्त्री पाई। तदनन्तर उसके मनमें यह भाव उदय हुआ—"बाघ आकर मुझे खाले।" उसी समय बाघ ने आकर उसे खा लिया। अतः "भगवान के निकट रह कर कुछ नहीं मिला" ऐसा बकना अनुचित है।

[३७१] अपने को जो जीव जानता है वही जीव है और जो आत्मा को शिव समझता है वही शिव है।

[३७२] हाथी को छोड़ देने से वह सब दिशाओं के झाड़-झंखाड़ कुचल कर चला जाता है, परन्तु अंकुश के प्रयोग से वह सीधा चलता है। इसी तरह मनको स्वतन्त्र करने से वह नाना प्रकार के भले बुरे विचार करता है, परन्तु विवेक के अंकुश से शान्त रहता है।

———

विवेक और वैराग्य

[३७३] यदि विवेक और वैराग्य उदय न हुए तो शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है। विवेक और वैराग्य बिना धर्म नहीं सध सकता। गुण दोष की विवेचना और देह से आत्मा को अलग जानना अथवा प्रकृति और पुरुष का भेद जानना विवेक है। विषय में मनका फीका होना तथा कनक और कामिनी की चाह छोड़ना वैराग्य है।

[३७४] जो मनुष्य अपनी आत्मा को पहचान सके, वह अन्य को भी ईश्वर जान सकता है। हम कौन हैं ? हाथ, पांव, रक्त, मांस, और आत्मा इनमें से हम कौन हैं ? सोचने से जान पड़ता है कि हम इनमें से कोई भी वस्तु नहीं हैं। प्याज का छिलका छुड़ाते छुड़ाते जैसे प्याज नाम की कोई वस्तु शेष नहीं बचती। वैसे ही विचार करने से 'हम' मिथ्या समझ पड़ता है। विवेचना करने से अन्त में जो शेष बचता है वही ईश्वर और सब में सार है। 'ह्‌ र' अर्थात् अहंकार दूर होने से जीव को ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

[३७५] सच्चिदानन्द रूपी समुद्र में मग्न होना चाहिये, पर यदि काम क्रोध आदि घड़ियाल के पकड़ने का डर हो तो विवेक वैराग्य रूपी हल्दी लगाकर गोता मारो।

[३७६] घोड़े की आंखें अगल-बगल न ढँकने से वह ठीक सीधा नहीं जाता। उसी प्रकार ज्ञान और भक्ति के सहारे संसार-पथ पर चलना सीखने से मन कुपथ पर नहीं जा सकता।

[३७७] दैवात् किसी निकम्मे स्थान में जाना पड़े तो आनन्द-मयी माता भगवती को मन में साथ लिये रहो। वहां जो कोई बुरे कार्य करने की तुम्हारी इच्छा भी होगी तो माता शिशु की रक्षा आप करेगी। माता के साथ रहने से लज्जा के कारण बुरे कार्य न कर सकोगे।

[३७८] प्रश्न—वैराग्य कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर—वैराग्य साधारणतः दो प्रकार का होता है (१) तीव्र और (२) मन्द। तीव्र वैराग्य रात्रि भर में कुंआ खोदकर जल लाने के समान है, पर मन्द वैराग्य वाला कहता है कि—"होने दो चाहे जब हो।"

× × × ×

[३७९] प्रश्न—वैराग्य किस रीति से करना चाहिये ?

उत्तर—स्त्री ने अपने पति से कहा—"हमारे भाई भी सन्यासी होंगे, आज कई दिन से यत्न करते हैं।" तब पति ने कहा—"बावली वह कभी सन्यासी न हो सकेगा, सन्यासी होने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं करना पड़ता।" स्त्री ने कहा—"तब कैसे होता है ?" पति ने कहा—"सन्यास कैसे होता है यह देखना चाहती है ?" इतना कहकर पति कपड़ा फेंक लँगोट ले घर से चला गया।

× × × ×

[३८०] एक मनुष्य देह में तेल लगाकर नहाने जाता था। मार्ग में उसने सुना कि अमुक आदमी सन्यासी होने का यत्न करते हैं। यह सुन उसे बोध हुआ कि सन्यासी होना ही जीवन का मुख्य कर्तव्य

है। अतः उसी समय वह देह में तेल लगाये ही सन्यासी होने चला गया और फिर घर को नहीं लौटा। बस यही उत्कट वैराग्य है।

धर्म पुस्तक का पढ़ना

[३८१] ग्रन्थ, ग्रन्थ नहीं है किन्तु ग्रन्थि है।

[३८२] जो थोड़ी अङ्गरेज़ी पढ़ा होता है वह बात बात पर अङ्गरेजी बोलता है, पर जिसने बहुत पढ़ी है उसके मुख से अङ्गरेज़ी नहीं निकलती। धर्म-शिक्षा के विषय में भी यह बात घटती है।

[३८३] जिससे तत्वज्ञान प्राप्त होता है उसे शास्त्र कहते हैं। तत्वज्ञान के विरोधी ग्रन्थ अशास्त्र कहे जाते हैं।

कौन मनुष्य आत्मज्ञान नहीं कर सकते हैं

[३८४] कोई साधक एक समय योग साधन करने के लिये अत्यन्त व्याकुल हुआ। परमहंसदेव एक दिन उसके मकान पर जाकर एक छोटी बालिका को देखकर बोले कि "क्यों जी! यह लड़की किसकी है?" साधक ने विनीत भाव से कहा—"जी! मेरी है।" परमहंसदेव बोले—"तुम्हारा तो अच्छा योग सधा है, फिर तुम क्यों योग के लिये व्याकुल हुये हो।" सुना जाता है कि उसी दिन से उस साधक ने स्त्री संग बिल्कुल त्याग दिया।

[३८५] एक समय एक बूढ़ा ब्राह्म समाजी किसी युवा पुरुष की परमहंसजी में अत्यन्त प्रीति देखकर युवा के सामने परमहंसजी की अनेक प्रकार से निन्दा करने लगा—"परमहंसजी पागल हैं, उनकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, एक ही विषय का विचार करते करते उनका दिमाग बिगड़ गया है। विलायत में भी बहुत से ऐसे लोग मिलते हैं जिनका दिमाग एक ही विषय को सर्वदा सोचते सोचते बिगड़ जाता है" इत्यादि। उसकी यह बात धीरे धीरे परमहंसजी के कान तक पहुँची। तब उन्होंने उस बूढ़े को अपने पास बुलाया। बृद्ध ने उनसे कहला भेजा कि "मैं आप से अमुक दिन मिलूँगा।" संयोग वश उस दिन वह परमहंसजी के पास न पहुँच सका। परमहंसजी ने तब फिर बुलवाया। उसने फिर कहला भेजा कि "अमुक दिन आऊँगा।" दैवात् किसी कार्य-वश वह उस दिन भी न आ सका। उसके उपरान्त बहुत दिन पीछे वह बूढ़ा परमहंसजी के पास आया। उसे देख परमहंसजी बोले—"क्यों जी! तुमने मेरे विषय में क्या कहा था कि मेरा मस्तिष्क विकृत हो गया है। मेरा माथा बिगड़ा हो या न बिगड़ा हो, परन्तु देखो मैं जिसके पास जिस दिन जाने को कह देता हूँ उस दिन अवश्य ही जाता हूँ और तुमने दो बार यह कहला भेजा कि अमुक समय पर आऊँगा पर नहीं आये।" बृद्ध ब्राह्म प्रचारक यह सुनकर चुप हो गया। परमहंस जी फिर बोले—"तुमने जो विलायती विज्ञानियों का हाल बताया था, जानते हो वे किस विषय का विचार करते करते पागल हो गये हैं? बतलाओ जड़ और चैतन्य क्या है? जड़ वस्तु का चिन्तन करते करते लोग बावले हो

जा ँ तो इसमें क्या अचरज है ? परन्तु जिसकी चैतन्यता से जगत चैतन्य है उस चेतन के विषय में विचार करने से कभी कोई पागल हो सकता है ? क्या तुम्हारे ज्ञानग्रन्थ में यही लिखा है ?"

[३८६] पाँव में कांटा लग जाता है तो दूसरे कांटे से उस कांटे को निकाल कर अन्त में दोनों कांटे फेंक दिये जाते हैं। ऐसे ही अविद्या के नाश के लिए विद्या रूपी माया की आवश्यकता होती है, अन्त में पूरा ज्ञान होने पर विद्या और अविद्या दोनों दूर हो जाती हैं।

माया की मोहिनी शक्ति

[३८७] माया का भेद प्रगट होने पर वह आप ऐसे ही भाग जाती है। जैसे गृहस्थ के जानने पर कि चोर घर में आया है चोर स्वयं भाग जाता है।

[३८८] जिसे भूत लगता है वह यदि आप जान जाय कि मुझे भूत लगा है तो भूत भाग जाता है। ऐसे ही यदि माया में फँसा हुआ मनुष्य जान ले कि माया मुझे पकड़े है तो माया भाग जाती है।

[३८९] प्रश्न—माया से बचने के लिये हम क्या उपाय करें ?

उत्तर—माया से बचने के लिये जो उपाय है उसे भगवान आप ही बता देते हैं। पहिले सच्चे भाव से मुमुक्षु होना चाहिये।

[३९०] परमहंस देव कहा करते थे—"केवल एकाध बात में समझना चाहो तो मेरे पास आओ और लाखों बातें सुनकर समझना

चाहते हो तो केशवचन्द्रसेन के पास जाओ।" किसी मनुष्य ने एक समय उनसे कहा—"मुझे एक ही बात में ज्ञान दीजिये।" स्वामी जी ने कहा—"ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या।"

[३९१] हरिदास बाघ का चेहरा लगाकर एक बालक को डरा रहे थे। बालक डर कर रोने लगा। माँ ने आकर लड़के से कहा—"उससे क्या डरते हो? वह तो हमारे हरिदास हैं उन्होंने मुख पर कागज का बना बाघ का चेहरा लगाया है," पर लड़का चुप न हुआ। अन्त में जब हरिदास चेहरा उतार कर आगे खड़े हो गये और वह चेहरा लड़के को दे कर चुप किया, तब उस लड़के ने भेद समझ लिया। वह फिर चेहरे से नहीं डरा। इसी प्रकार जो माया में फँसे हैं, वे जब माया का भेद पावेंगे तब उससे न डरेंगे।

[३९२] सांप के शरीर में विष रहता है, पर उससे उसकी कुछ हानि नहीं होती। जब दूसरे को वह काटता है तब विष का असर होता है। वैसे ही माया भगवान में रहकर भी उनको नहीं लगती, परन्तु दूसरे को विकल करती है।

[३९३] एक दिन एकाएक बादल घिर आया, परन्तु वायु से फिर तुरन्त उड़ गया। यह देखकर एक परमहंस नङ्गा होकर बड़े सुख से नाचने लगा और बोला कि माया भी इसी प्रकार आती है और चली जाती है। पहिले वह नहीं थी, बीच में आ गई और अन्त में फिर जाती रहैगी।

[३९४] बिल्ली अपने बच्चे को दांतों से ऐसा पकड़ती है कि बच्चे के शरीर में तनिक भी दाँत नहीं चुभते, परन्तु जब वह मूसे

को पकड़ती है तो मूसा मर जाता है। वैसे ही माया भगवद्भक्त को तो छोड़ देती है पर औरों का नाश करती है।

[३९५] एक बार परमहंस जी भाव में आकर कहने लगे— "मुझे फूल-माला नहीं चाहिये, उसका आधार सूत चाहिये।" मतलब यह कि मुझे भक्त नहीं वरन् परमेश्वर चाहिये।

[३९६] मछली कीच में रहती है परन्तु उससे मैली नहीं होती। ऐसे ही मुक्त पुरुष संसार में बस कर भी उसके कलङ्क से दूषित नहीं होते।

[३९७] साँप जैसे अपनी केंचुली से अलग है, वैसे ही शरीर से आत्मा भी अलग है।

[३९८] कोई साधु काँच के झाड़ की एक कली रात-दिन हाथ में लिये उसे बार बार देखकर हँसा करता था। हँसने का कारण यह था कि वह जानता था कि जैसे इस झाड़ की कली में अनेक रंग दिखाई देते हैं, परन्तु सब झूठे हैं। वैसे ही यह जगत भी व्यवहार में तो सच्चा जान पड़ता है पर वास्तव में मिथ्या है।

शरीर अनित्य है

[३९९] परमहंस जी की बीमारी की अवस्था में किसी ने उनसे कहा—"जब आपको समाधि लगती है तब आप माता से कह कर उनसे रोग क्यों नहीं अच्छा करा लेते?" यह सुनकर परमहंसजी बोले—"छी छी! इस लोहू और पीब से भरे शरीर के निमित्त

माता से कहना पड़े, छी छी !"

[४००] पिंजड़े से पक्षी के उड़ जाने पर पिंजड़े का आदर कोई नहीं करता। ऐसे ही शरीर रूपी पिंजड़े से जीव रूपी पक्षी के निकल जाने पर फिर मृतक शरीर का कोई आदर नहीं करता।

[४०१] जब कभी रोग-शोक के विषय में चर्चा होती थी, परमहंस जी कहा करते थे—"जैसे सराय में रहने से उसका किराया देना पड़ता है। वैसे ही शरीर रूपी गृह में रहने से उसका भाड़ा चुकाना पड़ता है। रोग-शोक को घर का किराया समझना चाहिये।"

[४०२] प्रश्न—यदि यह शरीर तुच्छ और अनित्य है तो साधु भक्त इस शरीर के लिये इतना यत्न क्यों करते हैं ?

उत्तर—सिर्फ़ सन्दूक को रक्षा कोई नहीं करता, पर जिस सन्दूक में मुहर, रुपये और बहु-मूल्य रत्न भरे होते हैं उसकी रक्षा सब करते हैं। साधु लोग उस शरीर की इसलिये रक्षा करते हैं कि इसमें ईश्वर अपनी लीला दिखाता है और इसी में वह प्रकट भी होता है।

[४०३] प्रश्न—इस शरीर में ईश्वर किस भाव से बास करता है ?

उत्तर—जैसे पिचकारी की मूसरी पिचकारी में रहकर भी उससे अलग रहती है। वैसे ही ईश्वर शरीर में रहकर भी उससे अलग रहता है।

[४०४] जब तक अग्नि की ज्वाला जलती रहती है, तब तक उस पर रखे हुये दूध में उफान आता है, पर ज्वाला हटा लेने से वह

फिर ज्यों का त्यों शान्त हो जाता है। यही साधनावस्था की भी बात है। उत्तेजन के बढ़ाने से साधना बढ़ती है और घटाने से घटती है।

खान पान

[४०५] जो हविष्य (यज्ञ का शेष अन्न) खाता है पर ईश्वर को नहीं चाहता। वह मानों गोमांस भक्षी है और गोमांस भक्षी भी यदि ईश्वर को चाहता है तो वह मानों हविष्य का अन्न खाता है।

[४०६] जिस भोजन से मन चञ्चल नहीं होता वही भोजन खाना उचित है।

[४०७] जिसकी जिस आहार में रुचि है उसे वही आहार करना चाहिये।

[४०८] जिसका मन ईश्वर की ओर लगा होता है उसकी रुचि आहार की ओर कभी नहीं जाती।

[४०९] जिसको प्यास लगी हो, वह गङ्गाजल को मैला कह कर नया तालाब खोदकर पानी पीने जायगा? जिसको धर्म्म की प्यास न लगी हो, वही हिन्दू धर्म को छोड़कर नया धर्म पालन करना चाहता है। प्यास होने से ढकोंसला नहीं चलता।

धन सम्पत्ति

[४१०] पैसे कौड़ी से दाल भात बनते हैं, पर यह मत समझो कि पैसा कौड़ी शरीर का चाम लोहू अथवा राज्य है।

[४११] धन होने से अहङ्कार करने की कोई बात नहीं है। यदि कोई धनी कहे कि मैं धनी हूँ इस कारण अहङ्कार करता हूँ। तो उसे सोचना चाहिये कि मुझसे भी बढ़कर बहुतेरे धनी हैं जिनके सामने मैं भिखारी हूँ। सन्ध्या के बाद अन्धकार फैलने पर जब जुगनू चमकता है, तब वह समझता है कि मैं सारे संसार का प्रकाशक हूँ। किन्तु जब वह तारों को चमकते देखता है तब उसका अहङ्कार जाता रहता है, परन्तु तब सितारे समझने लगते हैं कि हमारी ही ज्योति से जगत प्रकाशमान है। किन्तु थोड़ी देर पीछे जब चन्द्रमा उदय होता है तो सितारों का भी अभिमान नष्ट हो जाता है और उन्हें भी नीचा देखना पड़ता है। वैसे ही चन्द्रमा सोचता है कि मेरी ही चांदनी से जगत में उजियाला फैला हुआ है। इतना ही नहीं, वरन् ऐसा समझता है कि संसार को मैं हंसती हुई सुन्दर ज्योति छटा से नहला रहा हूँ, परन्तु अन्त में सवेरा होने पर सूर्य के प्रकाश से जगत् प्रकाशित हो जाता है, फिर चन्द्रमा कहां रहा ? वैसे ही जो अपने को धनी समझ कर अहङ्कार करते हैं यदि वे इन भौतिक पदार्थों के विषय में विचार करें तो उनका अहंकार नष्ट हो जायगा, फिर कभी धन का वे अहंकार न करेंगे।

[४१२] पुल के नीचे जल बे-रोक टोक आता जाता है, रुकता

नहीं है। इसी तरह मुक्त हुये उदार पुरुष के हाथ में पैसा आते ही व्यय हो जाता है।

निन्दा और स्तुति

[४१३] जो दूसरे की अनधिकार चर्चा करता है वह आत्मा और परमात्मा दोनों के विषय का विचार भूल जाता है।

[४१४] स्तुति या निन्दा दोनों को हमें कौवे की काँव काँव समझना चाहिये। किसी मनुष्य को भला कहते जितना समय लगता है उतना ही समय निकम्मा कहते लगता है। इस कारण किसी की स्तुति या निन्दा पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

क्षमा और सहिष्णुता

[४१५] वर्णमाला में प्रत्येक अक्षर अलग अलग हैं, परन्तु 'ह' कार से पूर्व श, ष, स ये तीन अक्षर हैं। वे तीनों तथा ह मिल कर शिक्षा देते हैं कि जितना सहते बने 'सहो'।

[४१६] क्षमा ही तपस्वियों की पहचान है।

[४१७] सज्जन का क्रोध और पानी का धब्बा अधिक समय तक कायम नहीं रहता।

अहंकार

[४१८] प्रश्न—मुक्ति कब होगी?

उत्तर—जब अहंकार दूर हो।

"जब दूर हो अहंकार।
तब होवे निस्तार।"

[४१९] सूर्य ताप पहुँचा कर सारे जगत को जीवित रखता है, पर बादलों से ढक कर वह वैसा नहीं कर सकता। इसी प्रकार मनुष्य के मन के भीतर 'मैं' तत्व रहने से ईश्वर छिपा रहता है।

[४२०] जब राम, सीता और लक्ष्मण बन को पधारे। तब आगे आगे राम, बीच में सीता और पीछे पीछे लक्ष्मण चलते थे। लक्ष्मण राम के दर्शन के लिये उत्कंठित होते थे, तब उनकी बिनती से सीता तनिक हट कर चलने लगती थीं। उतने में लक्ष्मण को राम का दर्शन हो जाता था। ऐसे ही ब्रह्म और जीव की स्थिति है। माया के हटते ही जीव को ब्रह्म का दर्शन हो जाता है।

मोहान्ध का यही सिद्धान्त है 'कि हमीं काम करते हैं'

[४२१] भगवान शङ्कराचार्य का एक शिष्य था। उसने बहुत दिन तक उनकी सेवा की, तोभी उन्होंने उसको कभी उपदेश नहीं

दिया। एक दिन भगवान शङ्कराचार्य अपने आसन पर बैठे थे कि उन्होंने किसी आदमी के आने की आहट सुनी और बोले—"कौन है?" शिष्य ने कहा—"हम"। आचार्य बोले—"हम" शब्द मन में बहुत अच्छा लगता है पर इसका अर्थ विचारो तो सभी जगत् 'हम' है, यदि ऐसा अर्थ न समझो तो हम शब्द के व्यवहार को छोड़ दो।

अहम् ईश्वर का दास है

[४२२] यह सच है कि मुक्ति तभी होगी जब अहंकार दूर हो जायगा, परन्तु अहंकार दूर होने के पहिले भी यदि अहंकार के साथ साथ 'मैं भी भगवान का दास हूँ' का भाव बना रहे तो अहंकार क्या बिगाड़ सकता है?

[४२३] अहंकार दो प्रकार का होता है एक कच्चा और दूसरा पक्का। मैं अमुक का पुत्र हूँ, वह मेरा घर है, मेरा नाम यह है इत्यादि अहंकार कच्चा है और भगवान के सम्बन्ध में जो अहम् भाव होता है वह पक्का अहंकार है। अर्थात् मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ, केवल यही नहीं किन्तु सभी पदार्थ ईश्वर के हैं ऐसा अहंकार पक्का है।

क्या अहंकार का पूरे तौर से नाश हो सकता है

[४२४] प्रश्न—क्या अहंकार का सर्वथा नाश नहीं होगा ?

उत्तर—कमल का पत्ता टूट कर गिर पड़ता है, पर नाल में उसका चिन्ह रह जाता है। ऐसे ही अहंकार के नाश होने पर उसका संस्कार कुछ रह जाता है, पर वह कुछ हानि नहीं कर सकता।

[४२५] एक मनुष्य ने किसी से कहा—"स्वभाव अमिट है।" दूसरा बोला आग में कोयले की स्याही (कालापन) जाती रहती है। परमहंस जी का कहना है कि जलते हुये अङ्गारों में कालापन नहीं रहता तथा भस्म हो जाता है।

[४२६] जिस पात्र में लहसुन पीस कर रक्खा जाता है, उसे चाहे जैसे मांजो पर दुर्गन्ध नहीं जाती। अहंकार भी इसी प्रकार की बुरी वृत्ति है। उसके दूर करने का कितना ही उपाय करो पर वह मिट नहीं सकता।

[४२७] नारियल या खजूर के पेड़ का पत्ता गिर जाता है, परन्तु उसका दाग (निशान) बना रहता है। ऐसे ही शरीर के रहते अहंभाव नहीं जाता, परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष को वह फिर संसारी फन्दे में नहीं फाँस सकता।

सब ईश्वर ही का है

[४२८] जिस प्रकार गृहस्थों के घर की दासियां संसार के सम्पूर्ण कार्य किया करती हैं। सन्तानों का लालन पालन करती

हैं और उनके मर जाने पर रोती पीटती भी हैं, किन्तु खूब जानती हैं कि वे उसके सगे नहीं हैं। उसी प्रकार संसार की कोई भी चीज़ अपनी नहीं है सब कुछ ईश्वर की ही है।

[४२९] भगवान को दो बातों पर हंसी आती है। एक तो जब भाई भाई आपस में धरती बाँट कर कहते हैं। इतनी हमारी भूमि है और उतनी तुम्हारी है। दूसरे जब रोगी की मरण दशा में भी वैद्य कहता है कि 'हम इसे बचावेंगे।'

जातिभेद

[४३०] प्रश्न—जनेऊ इत्यादि बाहरी चिन्ह पहिनना अच्छा है या नहीं?

उत्तर—आत्मज्ञान होने पर जब मुख्य बन्धन मिट जाता है, उस समय आप ही आप और सब बन्धन छूट जाते हैं। तब ब्राह्मण शूद्र में कुछ भेद नहीं रहता और जनेऊ स्वतः गिर जाता है। परन्तु जब तक जीव में भेद-बुद्धि रहती है तव तक जनेऊ आदि चिन्हों को नहीं छोड़ना चाहिये।

[४३१] पेड़ से गिरा पक्का फल मीठा लगता है, पर कच्चा फल यदि खाया जाय तो मीठा नहीं लगता। ज्ञान उदय होने पर ज्ञानी की बुद्धि में जाति-भेद नहीं रहता, पर अज्ञानी के लिये जाति भेद मानना अत्यन्त आवश्यक है।

[४३२] एक समय एक विद्यार्थी ने परमहंस जी से पूछा—

"महाराज हरि तो पुरुष मात्र के हृदय में वास करते हैं, तो फिर किसी के हाथ का अन्न खाने में क्या दोष है?" परमहंसजी ने उससे पूछा—"तुम ब्राह्मण हो?" उस विद्यार्थी ने कहा—"हां, हूँ।" परमहंस जी ने कहा—"फिर भी हमसे प्रश्न करते हो? अच्छा तुम एक दियासलाई जलाओ और तुरन्त उसके ऊपर सूखी लकड़ियों का ढेर कर दो, बताओ क्या घटना होगी?" उस विद्यार्थी ने कहा—"दियासलाई की आग तुरन्त लकड़ियों के ढेर से दब कर बुझ जायगी।" परमहंस जी ने पूछा—"तुम बड़े प्रज्वलित दावानल में केले का पेड़ काट कर झोंक दो तो क्या परिणाम होगा?" उसने उत्तर दिया—"वह तुरन्त जल कर राख हो जायगा।" परमहंस जी ने कहा—"देखो इसी प्रकार यदि तुम्हारी ज्ञानाग्नि मन्द है, तो पात्रा-पात्र का विचार बिना किए खान-पान करने से संभव है कि वह ज्ञानाग्नि बुझ जावे। परन्तु यदि तुम्हारी ज्ञानाग्नि प्रबल हो तो जाति-पाँति का विचार बिना किये भी खान-पान किया जावे तो वह तुम्हारी ज्ञानाग्नि में भस्म हो जायगा।"

[४३३] फोड़ा अच्छा होने पर समय पाकर आपही उसका खूंट गिर जाता है, परन्तु कच्चा खूंट तोड़ देने से उसमें से लोहू निकलने लगता है। ऐसे ही ज्ञान के उदय होने से जाति-भेद अपने आप नहीं रहता, परन्तु अज्ञानी मनुष्यों को जाति भेद मानना ही चाहिये।

[४३४] आंधी चलने के समय यह मालूम नहीं पड़ता कि कौन बड़ है और कौन पीपल है। ऐसे ही ज्ञानोदय होने पर ज्ञानी की मति में जाति-भेद नहीं रह जाता। पहाड़ पर चढ़ने से उसके नीचे

के बड़े बड़े साल के पेड़ छोटे देख पड़ते हैं, परन्तु नीचे के साल ऊँचे जान पड़ते हैं। पर पहाड़ पर चढ़ने से साल के पेड़ और तृण समान दिखाई देते हैं। योंही संसारी दृष्टि से माता-पिता आदि गुरुजन महान जान पड़ते हैं, परन्तु ईश्वर में चित्त लगाने से सब समान जान पड़ते हैं। अतः केवल महान् भगवान की ही सेवा करना उचित है।

[४३५] ऊँचे चढ़ कर देखने से सब समान दिखाई देते हैं। इसी प्रकार ईश्वर की प्राप्ति होने पर गुण दोष की दृष्टि नहीं रहती।

भेद में भी एकता

[४३६] एक की संख्या के आगे लगातार शून्य देते चले जाने से संख्या बढ़ती है, परन्तु एक के अंक को मिटा देने से फिर कुछ भी शेष नहीं रहता। उसी प्रकार ईश्वरात्मक एक को छोड़ देने से जीव का सर्वस्व भूठा हो जाता है।

[४३७] हम को गृहस्थों के महलों में जाकर स्त्रियों के देखने से मालूम होता है कि हमारी सच्चिदानन्दमयी माता नाना प्रकार के पट-भूषण धारण किये घूँघट मार कर सती की साज सज कर विराजमान है और जब हम कलकत्ते के मछुआबाजार में जाकर देखते हैं कि ऊपर के बरामदों में हुक्का हाथ में लिये, सिर उघारे गहने पहिने स्त्रियां खड़ी हैं, तब मालूम होता है कि हमारी सच्चिदानन्द-मयी माता वेश्या रूप धारण करके कोई अजबसा खेल खेल रहीं हैं।

[४३८] मनुष्य तकिया के गिलाफ़ के समान है। जैसे गिलाफ़ पर तरह तरह के काले और लाल रंग होते हैं परन्तु उसके भीतर एक सी ही रुई रहती है। इसी प्रकार मनुष्यों में कोई काला, कोई गोरा, कोई साधु और कोई असाधु हैं, पर सब के भीतर एक ही परमेश्वर विराजमान है।

[४३९] परमहंस जी कहते थे सब वस्तु परमेश्वर ही हैं। मनुष्य परमेश्वर है, हाथी परमेश्वर है, घोड़ा परमेश्वर है, लम्पट परमेश्वर है और साधु भी परमेश्वर है।

[४४०] हम बनि पन्नग दर्शन करहीं,
बनि खगेश हमही विष हरहीं।
हाकिम बनि हम हुकुम चलावैं,
बनि सिपाहि हम जङ्ग मचावैं॥

[४४१] जब चोर चोरी करने लगता है तो ईश्वर गृहस्थ को जगाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर की अनुमति बिना कुछ नहीं होता।

मनुष्य की दुर्बलता कैसे दूर हो

[४४२] जीवका अहंकार दूर हुए बिना शिव नहीं मिलता और शिव के शव हुए बिना आनन्दमयी माता उनके ऊपर नहीं नाचती।

[४४३] जिसकी जिसमें आसक्ति की वासना है, उसे उसके सम्बन्ध में विचार रखना ज़रूरी है और जिस वस्तु के लिये

समय समय पर अभिलाषा होती है उसका उसे भोग करना कर्त्तव्य है। क्योंकि भोग-वासना का क्षय न होने से किसी को तत्वबोध नहीं हो सकता।

[४४४] स्त्री मात्र ही भगवती का अंश है।

भक्तों में परस्पर मित्रता

[४४५] प्रश्न—भक्त को अकेला रहना अच्छा क्यों नहीं लगता ?

उत्तर—गांजा पीने वालों को जैसे अकेले गांजा पीना अच्छा नहीं लगता। वैसे ही अकेले माता का नाम पुकारना भक्त को अच्छा नहीं लगता।

[४४६] रात्रि में पत्नी पति से जो बात-चीत करती है दूसरे किसी से नहीं कहती और न कहने की उसे इच्छा ही होती है। यदि वह बात कहीं खुल जाती है तो वह लजाती है, पर अपनी सहेलियों को वह सब कह सुनाती है और प्रसन्न होती है। यदि वह बात अपनी सखियों से न कहे तो उसका पेट फूलता है (अर्थात् गुप्त नहीं रख सकती)। ईश्वर के भक्त भी उसी प्रकार ईश्वर से बातें करते हैं, उन बातों से उन्हें जो उद्गार होता है उसे वे ऐसे वैसों से नहीं कहते। यदि कहें भी तो उससे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती, पर भक्त से कहने में वे मन खोल देते हैं और सुखी होते हैं। यदि भक्त से बातें न करें तो वे व्याकुल होते हैं।

[४४७] यदि ढोरों के बीच कोई अन्य पशु घुसे तो सब ढोर मिलकर उसे भगा देते हैं, पर यदि कोई अपनी जाति का पशु घुसे तो सब उसे जीभ से चाट कर अपने सा बना लेते हैं। इसी तरह परस्पर जब दो भक्त मिलते हैं तो बड़े प्रसन्न होते हैं और अलग होना नहीं चाहते, पर यदि कोई अभक्त आता है तो उससे वे नहीं मिलते।

भक्त जनों का प्रेम कभी घटता नहीं

[४४८] प्रश्न—क्या कारण है कि भक्तों की भक्ति कभी घटती नहीं?

उत्तर—व्यापारी के तराजू में जब धान या चावल तौला जाता है, उस समय उसकी गृहिणी टोकरी भर भर कर आगे रखती जाती है, उसी प्रकार भगवान अपने भक्त का भक्तिभाव चुकने नहीं देते। इसीलिये भक्त का भाव खतम नहीं होता। हाँ, कोरी पोथी पढ़ कर ज्ञानी बने हुए लोगों का ज्ञान दो दिन में लुप्त हो जाता है।

[४४९] प्रेम तीन प्रकार का होता है। उत्कृष्ट, प्रकृष्ट और निकृष्ट अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम प्रेम वह है जिसमें प्रेमी आप क्लेश सह कर और का भला चाहते हैं। मध्यम प्रेम वह है जिसमें मनुष्य अपनी और दूसरे की भी भलाई चाहता है, पर अधम प्रेम स्वार्थी है जिसमें मनुष्य अपने आप क्लेश उठाना नहीं चाहता चाहे और को क्लेश भले ही हो।

[४५०] चकमक पत्थर यदि सौ वर्ष जलमें रहे तो भी उसके भीतर की अग्नि बनी रहती है। उसे जब जल से निकाल कर लोहे पर ठोकते हैं तभी उसमें से आग की चिनगारी निकलती है। ऐसे ही पूर्ण भक्त सहस्रों संसारी वस्तुओं से घिरा रहने पर भी विश्वास-हीन नहीं होता। भगवान की कथा सुनते ही वह उन्मत्त सा हो जाता है।

हरि नाम और हरि भक्ति

[४५१] भगवान की कथा-वार्ता सुनने से जिसके तन में रोमावली होती है और प्रेम-जल नयनों से बहता है उसका फिर दूसरा जन्म कम ही होता है।

[४५२] हरि शब्द का अर्थ बहुत मनोहर है। जो मन को हरे वही हरि है।

'हरिबोल' शब्द नहीं, 'हरिबल' ठीक है, अर्थात् भगवान ही का बल है।

[४५३] जिस घर में भगवान का भजन होता है उस घर में कलियुग का प्रवेश नहीं होता।

पूजा और प्रायश्चित्त

[४५४] निहंग तोतापुरी गुरु का कहना था—"लोटे पर नित्य के न मांजने से काई लग जाती है।" अर्थात् प्रति दिन ध्यान न करने से चित्त अपवित्र हो जाता है। परमहंसजी का कहना है—"सोने के लोटे पर काई नहीं लगती।" अर्थात् भगवत्प्राप्ति होने पर अधिक साधन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

[४५५] परमहंसजी साधनावस्था में काली माई से प्रार्थना करते थे कि हे माई हमको शुद्धभक्ति और अटल विश्वास दे।

[४५६] दिन तो बीत गया पर कुछ करते न बना।

श्रद्धा और भक्ति

[४५७] जिसको विश्वास है उसको सब कुछ है। जिसे विश्वास नहीं उसे कुछ भी नहीं।

[४५८] जैसा भाव होता है वैसा ही फल मिलता है। फल की उत्पत्ति का कारण विश्वास ही है।

[४५९] किसी मनुष्य ने एक दिन स्वामीजी से कहा—"महाशय हमें कुछ बना दीजिये।" यह सुन कर स्वामी जी बोले—"नहीं बेटा मैं तुमको कुछ भी नहीं बना सकूंगा, तुम्हारी हड्डी हड्डी में काम और काञ्चन घुस रहे हैं, एकाएक कुछ नहीं हो सकता।" उसके बाद बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा—"यहां आया जाया

करो। इसी से जो कुछ होना होगा हो जायगा और कुछ नहीं करना पड़ेगा।"

[४६०] पत्थर चाहे सहस्रों वर्ष पानी में पड़ा रहे, पर उसमें जल नहीं भिदता और मिट्टी जल को छूते ही गल जाती है। ऐसे ही हृदय में दृढ़ विश्वास रहने से सहस्रों परीक्षा में भी विश्वास नहीं हटता। पर जिनके मन में विश्वास जमा नहीं रहता वह थोड़े ही समय में हट जाता है।

[४६१] रेलगाड़ी बिना श्रम के भारी भारी बोझा ढो ले जाती है। इसी तरह विश्वासी भक्त भी भक्ति-विश्वास के साथ इस संसार का भार माथे पर धरे हुए सहज ही में सुख से चले जाते हैं।

[४६२] सोते का पानी बेग से बहता हुआ जगह जगह भवँर में पड़ता है, परन्तु आगे फिर सीधा चला जाता है। ऐसे ही अन्तर्यामी ईश्वर, धार्मिकों के मन में भी कभी कभी विश्वास की घटती निराश और खेद उत्पन्न कर देता है, पर वह वृत्ति अधिक काल तक नहीं ठहरने पाती, शीघ्र ही दूर हो जाती है।

[४६३] लुहार की निहाई पर हथौड़े की कितनी चोटें पड़ती हैं, परन्तु वह वैसे ही बनी रहती है। मनुष्य में भी उसी प्रकार की सहन शक्ति होनी चाहिये।

नम्रता

[४६४] एक साँप गुरू से उपदेश पाकर ईश्वर की भक्ति में लगा। उसने काटना छोड़ दिया, परन्तु मुहल्ले के लड़के उस सर्प को

मारने लगे। सर्प भक्त था इसी कारण मार सहता था, पर किसी को काटता न था। यहां तक कि चोटों से उसका शरीर घायल हो गया। एक दिन दैवात् गुरू ने आकर उसकी वह दशा देखी और उससे कहा—"काटना छोड़ दिया यह अच्छी बात है, पर अब से कोई मारने आवे तो उसे काटो मत, पर फुफकार मारा करो, फुफकार मत छोड़ो।

[४६५] फलों से लदा पेड़ झुक जाता है यदि ऊँचा होने की इच्छा है तो तुम भी झुको।

अभिमान

[४६६] अभिमान राख की ढेर के समान है। पानी पड़ने से वह बह जाता है। जब ध्यान अथवा और किसी प्रकार की भक्ति करने से उसका फल नहीं मिलता, तब ज्ञान रूपी कुदारी से अभिमान रूपी राख को खोदकर तब भक्ति करनी चाहिये। इससे शीघ्र आत्मा का दर्शन होता है।

[४६७] हमारी चिन्तामणि के नृत्यद्वार पर न जाने कितनी मणियां पड़ी हैं।

[४६८] धर्म की विशेष बातें सुनीं पर उनका कुछ फल न मिला इसका क्या कारण है? जैसे नाले का जल एक ओर से आता है और दूसरी से चला जाता है। ऐसे ही तुमने एक कान से धर्मवार्त्ता सुनी और दूसरी से निकाल दी, फल क्या मिलेगा?

[४६९] कोई मनुष्य अभिमान करके बोला—"मैं १४ वर्ष से धर्म में लगा हूँ, जिसने जो कर्त्तव्य बतलाया वही किया। न जाने कितने तीर्थ घूम आया और साधु-महात्माओं का सङ्ग किया, पर कुछ फल नहीं मिला।" यह सुन कर परमहंसजी बोले—"माता की शपथ कर कहता हूँ, जो उसे दिल से चाहता है ज़रूर पाता है।"

[४७०] किसी नये साधक ने एक मनुष्य के विषय में अपने मन में कुछ विचार किया। दैवात् उसके विचार के अनुसार ही घटना हुई। साधक ने समझा कि मुझे सिद्धि प्राप्त हो गई। वह खुश होकर तुरन्त परमहंसजी के समीप पहुँचा और बोला—"मुझे सिद्धि प्राप्त हुई।" परमहंसदेव उसकी बात सुनकर बोले—"छी! छी! उस ओर ध्यान मत ले जा।"

[४७१] एक धनी मारवाड़ी आकर परमहंसजी से बोला—"हम सब कुछ त्याग बैठे हैं, अब भी भगवान् क्यों नहीं मिलता?" उसकी बात सुनकर परमहंस देव बोले—"जैसे तेल के कुप्पे से तेल निकाल लेने पर भी कुप्पे में थोड़ा तेल और गन्ध रह जाती है वैसे ही तुम्हारे अन्तःकरण में अभी तक विषय वासना बनी हुई है।"

ईश्वर की कृपा

[४७२] शक्तिमयी महामाया की कृपा दृष्टि बिना कुछ नहीं सिद्ध होता।

[४७३] एक दिन परमहंस जी ने कहा—"मनुष्य इस कलि-

काल में भी तीन दिन में सिद्ध हो सकता है।"

[४७४] हवा चलती रहती है तो पङ्खा नहीं हाँकना पड़ता। ईश्वर की कृपा होने से फिर साधन की आवश्यकता नहीं रहती।

[४७५] ईश्वर की कृपा से सभी कुछ हो सकता है।

अध्यवसाय

[४७६] किसान बारह वर्ष तक अकाल रहने पर भी खेत में बीज बोने से नहीं रुकता। ऐसे ही विश्वासी मनुष्य जीवन भर भगवद्दर्शन न पाकर भी उसका भरोसा नहीं छोड़ता।

[४७७] दो मनुष्य मुरदा जगाने गये, उनमें से एक तो पागल हो गया, पर दूसरा रात्रि के पिछले पहर में माता का दर्शन पाकर बोला—"माता! वह क्यों पागल हो गया?" माता बोली—"तुम भी पहिले कई जन्मों में इसी प्रकार पागल हुए थे, अन्त में अब मेरा दर्शन पाया है।"

बालकवत् हो जाओ

[४७८] बच्चों का स्वभाव कैसा सरल होता है, वे रुपया देकर खिलौना ले लेते हैं। विश्वासी भक्त को छोड़ और कोई संसार का धन या मान त्याग कर ईश्वर को नहीं पाता।

[४७९] जब तक मनुष्य बालक के समान न हो, तब तक

उसको परम ज्योति का दर्शन नहीं हो सकता। संसारी विद्या भूल जाओ और बालक की तरह मूर्ख बनो तब तुम्हें भी ज्ञान होगा।

[४८०] सांप के सम्मुख मेंढक नाचै,
साँप न पकड़े ताहि।
स्नान करै पर बाल न भीगै,
अमिय अम्बु निधि माहि॥

[४८१] पागल, मतवाले तथा लड़के-लड़कियों के मुंह से कभी कभी देववाणी निकलती है।

सत्यपरायणता

[४८२] सत्य बोलना सब प्रकार आवश्यक है। सत्य बोलना न सीखने से कभी सत्य स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो सकती।

ईश्वर की शरणागति

[४८३] कोई बाप एक लड़के को गोद में लिये और दूसरे को हाथ से पकड़े मैदान में टहलने के लिये जाता था। चलते चलते एक चील दिखाई पड़ी। जो बालक बाप का हाथ थामे हुए जाता था वह हाथ छोड़ ताली बजा कर बोला—"पिता! देखो यह कैसा पक्षी है।" बाप का हाथ छोड़ते ही वह गिर गया और चोट खाई, परन्तु जो गोद में था वह ताली बजाकर खुश हुआ और गिरा भी

नहीं, क्योंकि बाप उसे थामे था। पहिला बालक पुरुषार्थ का और दूसरा भक्त का उदाहरण है।

[४८४] आत्म समर्पण से अधिक सुगम और कोई साधन नहीं है। आत्म समर्पण का भावार्थ यह है कि "अपने मन में आप किसी बल का अभिमान मत करो।"

[४८५] परमहंसदेव ने एक समय कहा कि "संसारी मनुष्य जो कुछ करते हैं वह सब ठीक है, केवल एक ही भूल है।" यह सुन किसी मनुष्य ने उनसे पूछा कि "महाशय, वह कौन सी भूल है?" परमहंसदेव जी ने कहा—"असार धन संपत्ति और मान के लिये यत्न न करके यदि भगवान् की प्राप्ति के लिये विद्या, बुद्धि, यत्न, परिश्रम त्याग कर कष्ट और सहिष्णुता का अभ्यास करे तो ठीक है।"

[४८६] भगवान् पर भरोसा करना बड़ा परिश्रम करने के पीछे तकिया से लेट कर हुक्का पीने की तरह है। क्योंकि उस समय कोई और सोच विचार मन में नहीं रहता, जो सोचता है वही करता।

[४८७] आंधी में जैसे पलास के पत्ते अपने आप उड़े फिरते हैं, वैसे ही भगवान् के भरोसे जो रहता है वह ईश्वर की राह में चलता है और उसे कोई यत्न नहीं करना पड़ता।

साधक का बल

[४८८] साधक का लड़कों के समान रोना ही बल है।

[४८९] एक एक आंख में दो दो कोर हैं। एक नाक की ओर

और दूसरी कान की ओर। उनमें से नाक की ओर की कोर से शोक के आंसू और कान की ओर की कोर से हर्ष के आंसू टपका करते हैं। शोक और हर्ष के आँसुओं में यही भेद है।

अविच्छिन्न तैल धारावत् भक्ति

[४६०] मन में भजन भाव उदय तो होता है पर ठहरता नहीं। बांस में अग्नि जलकर बुझ जाती है, पर धीरे धीरे फूंकने से जलती रहती है। अतः साधन ही मुख्य है।

[४६१] भजन क्या करें ? भोजन की चिन्ता तो लगी रहती है। भोजन की चिन्ता मत करो, जिसका काम करोगे वह भोजन देगा। जो भेजता है वह भोजन का सामान पहिले ही कर देता है। भोजन की चिंता वृथा है।

[४६२] दूसरे के मारने के लिये ढाल-तलवार चाहिये, पर अपने मारने के लिये सुई बहुत है। औरों के सिखाने के लिये ढेर के ढेर शास्त्र पढ़ने चाहिये, पर अपना धर्म एक ही सिद्धान्त पर विश्वास लाने से प्राप्त हो जाता है।

[४६३] एक समय एक सेवक अपने स्वामी से उपदेश की बात कह रहा था। उसे सुनकर स्वामी ने कहा—"हां, कहो क्या कहते हो ? तुमसे भी कुछ सीख लें।"

मन का एकीकरण

[४६४] एक मनुष्य मछली पकड़ रहा था कि एक अवधूत ने उससे पूछा कि अमुक स्थान को जाने का कौन सा मार्ग है? ठीक उसी समय मछली ने उसकी बंशी पकड़ी। इसी से उसने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु मछली में ध्यान लगाये रहा। जब पहले मछली पकड़ ली तब उसने अवधूत से पूछा—"आप क्या चाहते हैं?" अवधूत हाथ जोड़कर बोला—"आप मेरे गुरू हैं, जिस समय मैं परमेश्वर का ध्यान धरूँ उस समय आपके समान मेरा ध्यान दूसरी ओर न लगे, यही चाहता हूँ।"

[४६५] एक बगुला धीरे धीरे मछली पकड़ने चला जाता था। उसके पीछे एक व्याध उस पर बाण का निशाना साध रहा था, पर बगुला पीछे देखता ही न था। अवधूत ने बगुलेसे हाथ जोड़कर कहा—"जब मैं ईश्वर का ध्यान धरूं तब मेरा मन पीछे की ओर न जाय।"

[४६६] एक चील्ह के पीछे कई एक चील्हें और कौवे उड़ते जाते थे। उस चील्ह के चंगुल (पंजा) में एक मछली थी, इसीलिये और चील्हें और कौवे उसे नोचते-खसोटते चले जाते थे कि वह मछली को छोड़ दे। यहां तक कि उसने घबड़ा कर मछली छोड़ दी। मछली छूट कर गिरी कि दूसरी चील्ह ने पकड़ ली, तब वे चील्हें और कौवे उस चील्ह के पीछे लगे। पहिली चील्ह मछली को छोड़ सुखसे एक वृक्ष पर जाकर बैठी। एक अवधूत ने चील्ह का ऐसा

छुटकारा देख उसे धन्य धन्य कहकर कहा कि मैं समझ गया कि संसार का भार उतार देने से शान्ति मिलती है अन्यथा नहीं।

[४९७] ध्यान करने के पहले मन को ठिकाने करके थोड़ी देर ताली बजाकर हरि हरि कहो। पेड़ के नीचे ताली बजाने से जैसे पक्षी उड़ जाते हैं वैसे ही हरि हरि कहने से मन के बुरे भाव भी दूर भाग जाते हैं।

[४९८] जैसे छोटे निशाने के मारने से पहले बड़े निशानों का अभ्यास किया जाता है। इसी प्रकार साकार मूर्ति में मन ठहर जाने से निराकार ब्रह्म में बिना प्रयास लग सकता है।

[४९९] जिस प्रकार जलको हिलाने से उसमें सूर्य अथवा चन्द्रमा की परछाहीं नहीं दीखती, किन्तु ठहरे हुए जल में दीख पड़ती है। उसी तरह मनके न ठहरने से भगवान का रूप नहीं दिखाई देता। निश्वास प्रश्वास से मन चञ्चल होता है, अतएव जितना इनको घटाया जायगा उतना ही मन भी स्थिर होता चला जायगा।

[५००] जैसे पहिले बड़े बड़े अक्षर लिखते लिखते छोटा अक्षर लिखना आता है। वैसे ही साकार मूर्ति का ध्यान धरते धरते निराकार का ध्यान होता है।

[५०१] दीप की शिखा (लौ) में जो नीलिमा का अंश है उसे 'कारण' शरीर कहते हैं। साधक उसी में मन को लगाने की चेष्टा करें। कारण में मन लय होने पर धीरे धीरे ऊँची गति पाई जाती है। दीप-शिखा में नीलिमा के चारों ओर जो जलती हुई प्रभा का

अंश है उसे 'सूक्ष्म' शरीर कहते हैं और इसके परे जो आभा है उसे 'स्थूल' शरीर कहते हैं।

[५०२] मन टिकाने के लिये साधक को पहिले एकान्त स्थान में अभ्यास करना चाहिये। दूध और पानी एक पात्र में रखने से दोनों एक हो जाते हैं, परन्तु दूध का मक्खन बनाने से वह पानी के ऊपर ही तैरता रहेगा। ऐसे ही निरन्तर अभ्यास से मनुष्य मन को ठहरा सकता है, तब वह जिस किसी स्थान पर रहता है वहीं उसका मन आस-पास के और पदार्थों को छोड़ सदा ईश्वर में ही मग्न रहता है।

ध्यान

[५०३] ध्यान की पहली अवस्था में साधक को कभी कभी एक प्रकार की निद्रा आती है, उसी को योग-निद्रा कहते हैं। उस समय साधक को कभी किसी प्रकार का और कभी किसी प्रकार का दिव्य दर्शन होता है।

[५०४] जो ध्यान सिद्ध है उसको मुक्ति मिलती है यह कहावत है। ध्यान-सिद्ध की यह पहिचान है कि वह ध्यान लगाते ही ईश्वरीय भाव में मग्न हो जाते हैं और उनकी आत्मा ईश्वर के साथ बात-चीत करती है।

[५०५] सिर पर बगुला उड़े पर न जाने, तब समझना चाहिये

कि ठीक ध्यान लगा। तात्पर्य यह है कि ध्यान में ऐसा मग्न हो कि यदि उस समय उसके सिर पर एक पक्षी भी बैठ जाय तो भी उसे विदित न हो, तो समझो कि ध्यान ठीक लगा है।

[५०६] 'मनुष्य शब्द' मानों मनोहोश शब्द का अपभ्रंश है। जिसके मन में होश (चैतन्य) है वही मनुष्य कहा जा सकता है।

समाधि

[५०७] समाधि दो प्रकार की है, सविकल्प और निर्विकल्प।

[५०८] किसी समय परमहंसदेव जी बोले कि मैं सच्चिदानन्द रूपी सागर की मछली हूँ।

[५०९] समुद्र के पेट के भीतर बहुत से पहाड़ और पहाड़ियाँ तथा घाटियां हैं, जो लोगों को दिखलाई नहीं देती। समाधि दशा की अवस्थित का यही दृष्टान्त है कि समाधिस्थ जीव जब सच्चिदानन्द-सागर में निमग्न होता है, उस समय उसका मानुषिक चैतन्य गायब हो जाता है।

[५१०] प्रश्न—समाधि लगने पर मन की कैसी स्थिति होती है?

उत्तर—जीती मछली जैसे तलाब में छोड़ने से सुखी होती है, वैसे ही समाधि में मन को सुख मिलता है।

[५११] जिनको समाधि लगती है और जिनका अहंकार नाश

हो जाता है, ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े होते हैं। साधारणतः लोगों का अहंकार नाश नहीं होता। विवेक-वैराग्य कितना ही करो यही अहन्ता बार बार उदय होती है। पीपल का पेड़ आज तुम काटो, कल देखोगे कि दूसरे स्थान से वह फिर निकल आया।

[५१२] कठिन परिश्रम और चेष्टा से अपनी दुष्ट प्रकृति को परास्त करके आत्मज्ञान पाने के लिये निरन्तर मेहनत करने से जब किसी की समाधि लग जाती है तब यह अहन्ता नाश होती है, परन्तु समाधि प्राप्त करना बड़ा कठिन है। अहन्ता की शक्ति बड़ी भारी है, इसीलिये मनुष्य का संसार में आवागमन होता है।

साधक को कोई वस्त्र विशेष धारण करने की क्या आवश्यकता है?

[५१३] प्रश्न—क्या साधक को किसी प्रकार का भेष रचना उचित है?

उत्तर—हाँ उचित है। गेरुआ वस्त्र पहिन, मृदङ्ग करताल बजाकर गाने के समय मुँह से गज़ल नहीं निकलती। हाँ, काली किनारी की धोती पहिन और बालों को काढ़, छैल-चिकनियां बन, छड़ी हाथ में लेने से गज़ल गाने की बड़ी इच्छा होती है।

[५१४] प्रश्न—गेरुआ वस्त्र धारण करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—गेरुआ वस्त्र पहिनने से मन में सद्भाव उत्पन्न होता है। पाँव में लतड़ी और देह में चिथड़े पहिन कर पथ में निकलने से मन में जैसे नम्रता और दीनता आती है। वैसे ही कोट पतलून और बूट जूता पहिनने से मन में घमण्ड उमड़ता है। कमर में काली किनारी की धोती और गले में बेला चमेली के फूलों की माला पहिनने से निद्धूको * तान टप्पा ही गाना सूझता है।

[५१५] वकील के देखने से मन में जैसे मुक़द्में का भाव प्रकट होता है। वैसे ही भक्त के देखने से मन में भगवद्भाव पैदा होता है।

सिद्ध पुरुष

[५१६] फूलों पर मधु आपही निकलकर आ जाता है और जब फूल की सुगन्ध वायु से उड़ती है, तो मक्खी उसको सूंघ कर आ जाती है और चींटी जहां मिठाई रक्खी हो उस स्थान पर आ जाती है। मधुमक्षिका और चींटी को बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती? ऐसे ही जब मनुष्य परम पवित्र और सिद्ध हो जाता है, उसका निर्मल और सुन्दर चरित्र अपने आप चारों ओर फैल जाता है। सत्य के ढूंढ़ने वाले लोग सिद्ध पुरुषों के पास आपही आप आ जाते हैं। सत्य के प्रचार के लिये सिद्ध पुरुषों को इधर-उधर जाने की

---

* बंगाल में निद्धू बाबू एक महाशय थे जिन्होंने तान टप्पा गाने के बहुत से गीत बनाये हैं।

कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

[५१७] मतवाला जैसे नशे की झोंक (दशा) में कमर की धोती कभी सिर में बाँधता है और कभी बगल में दवा लेता है। सिद्ध पुरुष की अवस्था प्रायः वैसी ही होती है।

सर्प विषयुक्त होता है, उसे पकड़ो तो उसी समय वह काट लेता है, परन्तु जो मनुष्य उसका मन्त्र जानता है वह पकड़ना तो क्या बीसियों सांपो को गले में पहिनना भी एक खेल ही समझता है।

ऐसी भक्ति करो घट भीतर, छोड़ि कपट चतुराई।
सेवा बन्दन और अधिनता, सहजै मिलु रघुराई॥
अंका तारे बंका तारे, तारे सदन कसाई।
सुआ पढ़ावत गनिका तारी, तारी मीरा बाई॥
दौलत, दुनियाँ, माल, खजाना, बनियां बैल चराई।
एक बात से ठंडा पड़ गया, खोज खबरि न पाई॥

[५१८] हे माता ! मैं यन्त्र हूँ तो तुम यन्त्री हो। मैं गृह हूँ तो तुम गृहपति हो। मैं म्यान हूँ तो तुम तलवार हो। मैं रथ हूँ तो तुम रथी हो। मैं वही कर्म्म करता हूँ जिसकी तुम प्रेरणा करती हो। मैं वही कहता हूँ जो तुम मुझसे कहलवाती हो। मैं वही आचरण करता हूँ जो तुम चाहती हो। मैं नहीं, केवल तुमहीं तुम हो।

दृष्टान्त समुच्चय

[५१९] एक लकड़हारा जङ्गल की लकड़ी बेंचकर बड़े दुख से अपना निर्वाह करता था। अकस्मात् कोई ब्राह्मण उस रास्ते से निकला और उसके क्लेश को देखकर बोला—"बच्चा! आगे बढ़ो।" लकड़हारा ब्राह्मण के कहने से आगे बढ़ा और क्या देखता है कि एक चन्दन का बन है। उसी दिन जहां तक बना उसने चन्दन की लकड़ी काटी और बाजार में बेंची। उस दिन उसने अधिक मूल्य पाया। दूसरे दिन वह अपने मनमें सोचने लगा कि—"ब्राह्मण ने मुझे और दिन तो चन्दन काटने के लिये कहा ही नहीं, केवल यह कहा था कि आगे बढ़ो। आओ उसके कथानुसार आज और आगे बढ़ें।" यह कह कर वह आगे चला। वहां उसे तांबे की खान मिली और जितना तांबा वह ला सका लाया तथा बेंचकर बहुत धन पाया, परन्तु लकड़हारा वह बात भूला नहीं था। तीसरे दिन वह आगे बढ़ा और सोने की खान पाई। निदान चौथे दिन हीरे की खान पाकर वह बड़ा धनी हो गया। धर्म राज्य में भी यही हाल है। जो ज्ञान चाहो तो 'आगे बढ़ो।' साधन से किसी सिद्धि को पाकर उसमें मत भूलो। आगे चले चलो तो अनमोल धन पाओगे।

[५२०] एक मनुष्य कुंआ खोदने गया और दो हाथ मिट्टी खोदी कि इतने में एक दूसरा मनुष्य आया और बोला—"क्यों भाई! तुम क्यों व्यर्थ इतना परिश्रम करते हो? इसके नीचे जल

नहीं है, केवल बालू ही बालू है।" उसकी बात मान कर कुंआ खोदने वाला दूसरी जगह मिट्टी खोदने लगा। वहां पर एक तीसरा मनुष्य आया और कहने लगा—"भाई! यहां पहले कुंआ था। वृथा क्यों श्रम करते हो? जरा दाहिनी ओर खोदो तो उत्तम जल मिलेगा।" उसने वैसा ही किया। इतने में चौथे मनुष्य ने आकर उसे रोका। इसी प्रकार वह जहाँ जहाँ खोदता था, वहीं कोई आकर उसे रोक देता था। निदान वह कुंआ नहीं खोद सका। इसी प्रकार धर्म मार्ग में अटल विश्वास न होने से बहुतों ने अपना सब कुछ खो दिया है, क्योंकि आज जिसका विश्वास किया कल क्लेस में जब उसकी परीक्षा हुई तब उसका वह विश्वास जाता रहा और इसी तरह होते होते अन्त में या तो नास्तिकता आ जाती है या दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इस शरीर से धर्म साधन न हो सकेगा। इसलिये तुम्हें उचित है कि किसी एक की बात पर पूरा विश्वास करके उसी में लिप्त हो रहो।

[५२१] रामचन्द्रजी को पुल बांध कर समुद्र के पार जाना पड़ा, पर हनुमानजी राम-नाम के प्रभाव से बिना पुल पार हो गये। विश्वास का प्रभाव ऐसा ही होता है।

[५२२] शिष्य गुरु गुरु कहता ही नदी पार हो गया। गुरु ने देखा 'वाह क्या बात है। मेरे नाम का इतना प्रताप है यह मुझे पहिले नहीं मालूम था।' दूसरे दिन गुरु 'हम' 'हम' कहते नदी पार होने चले और हम हम कहते इतने गहिरे पानी में चले गये कि संभल न सके और डूब कर मर गये।

[५२३] दो आदमी एक बाग़ में घूमने गये। उनमें से एक जो विषय भोग में चूर था घुसते ही अपने मनमें बोला—"यहां कितने आम के पेड़ हैं? उनमें कितने फल हैं। बाग़ का मूल्य क्या होगा?" परन्तु दूसरा बाग़ के मालिक से कह कर एक पेड़ के आम तोड़कर खाने लगा। अब बताओ दोनों में कौन समझदार है? आम खाने से तो पेट भरता है, पत्ते और फल गिनने से क्या लाभ है? जिन्हें ज्ञान का अभिमान है वे तर्क-वितर्क में ही डूबे रहते हैं, पर बुद्धिमान् ईश्वर से प्रेम करके संसार में परम सुख भोगते हैं।

[५२४] प्रश्न—सच्चिदानन्द-रूपी समुद्र के किनारे बैठकर या उसमें डुबकी लगा कर जल पीना चाहिये?

उत्तर—यदि संसारी सुख भोग की इच्छा हो तो जल में मत घुसो, क्योंकि जो कोई उस समुद्र की गहिराई का पता लगाने गया वह फिर संसार में नहीं आया।

[५२५] आज कल के नये ढंग का कोई मनुष्य परमहंस जी के पास निर्लेप रहने की चर्चा करने लगा। परमहंस जी उससे बोले कि निर्लेप संसारी कैसे होते हैं जानते हो? एक भिखारी जब द्वार पर आता है तो घर का स्वामी अपनी स्त्री को अपने धन को अधिकारिणी बतलाकर आप निर्लेप संसारी होकर भिखारी से कहता है—"महाराज! हम तो पैसा कौड़ी कभी नहीं छूते। हमसे माँग कर आप क्या लाभ उठावेंगे?" यह सुन कर भी जब ब्राह्मण उसका पिण्ड नहीं छोड़ता तब बाबू जी भिखारी से कहते हैं कि 'कल आइये,देखा जायगा' और घर में जाकर स्त्री से कहते हैं—'एक दीन

ब्राह्मण दुखी है, उसे एक रुपया देना चाहिये।' रुपये का नाम सुनते ही स्त्री रुष्ट होकर कहती है 'वाह! बड़े दानी बने हो। रुपया क्या मानों ईंट पत्थर लाकर पाट दिया है।' बाबू जी एँ, एँ करके बोलते हैं कि 'दीन मनुष्य बड़ी बिनती करता है, एक रुपया लिये बिना न मानैगा।' स्त्री कहती है 'नहीं मैं रुपया कभी न दूंगी।' बाबूजी के हठ करने पर अन्त में स्त्री कहती है 'लो एक दुअन्नी ले जाओ।' बाबूजी निर्लेप संसारी हैं, क्या करें जो स्त्री ने हाथ में दिया, ब्राह्मण को लाकर दे देते हैं।

[५२६] रानी रासमणि की कालीवाड़ी में एक समय एक बावला सा साधू आया। उसको वहां एक दिन भोजन नहीं मिला और न उसने किसी से माँगा। एक कुत्ते को जूठा पत्ता चाटते देख उससे लिपट साधु ने कहा कि "तू आप खाता है, मुझको नहीं देता।" यह कह कर कुत्ते के साथ आप भी खाने लगा। बाद में कालीजी के सामने जाकर उसने ऐसी स्तुति पढ़ी कि मन्दिर गूंज उठा। जब वहां से वह चला तो परमहंसजी ने हृदय मुकरजी से कहा—"उस साधु के पीछे पीछे जाओ।" हृदय बाबू थोड़ी दूर उसके पीछे पीछे गये। तब साधु ने उनसे पूछा—"तुम मेरे पीछे क्यों आते हो?" हृदय ने कहा—"कुछ उपदेश चाहता हूँ।" साधु ने कहा—"जब कुंडी और गङ्गा के जल में अभेद होना और सहनाई तथा दूसरे बाजों में भेद न रहेगा तब जानना कि पूरा ज्ञान हुआ।" परमहंसदेव ने कहा—"मनुष्यों को ज्ञान से एक प्रकार का उन्माद भी होता है। सिद्ध मनुष्य जगत् में बालक, उन्मत्त और पिशाच

की तरह घूमते हैं।

[५२७] एक समय मार्ग में चलते समय अनजान में एक साधु का पाँव एक दुष्ट के पैर पर पड़ गया। उस दुष्ट ने तुरन्त नाराज़ होकर साधु को मार दिया, जिससे वह मूर्छित हो गया। साधु के शिष्यों ने सेवा करके उसको चैतन्य किया। कुछ चेत होने पर शिष्यों ने पूछा—"महाशय! देखिये आपकी सेवा कौन करता है?" साधु ने कहा—"जिसने मुझे मारा था वही सेवा करता है।"

[५२८] माया का भेद जाहिर होने पर माया शीघ्र भाग जाती है। एक गुरू किसी गाँव में अपने शिष्य के घर जाते थे, गुरू जी के साथ कोई नौकर चाकर न था। उन्हों ने रास्ते में एक मोची को जाते देखा और उससे कहा—"अरे! मेरे साथ रहेगा? यदि तू मेरे साथ रहे तो केवल अच्छा भोजन ही नहीं वरन् बड़ा आदर सत्कार पावेगा, चलना चाहे तो चल।" मोची ने कहा—"मैं महा-नीच जाति हूँ, आप का नौकर कैसे बन सकता हूँ?" गुरू ने कहा—"तुम किसी से बोलना मत और न अपनी जाति बतलाना, तब कोई चिन्ता न रहेगी।" मोची ने यह सुन नौकरी स्वीकार करली। सन्ध्या समय गुरूजी शिष्य के घर में सन्ध्या बन्दन कर रहे थे। उसी समय किसी दूसरे ब्राह्मण ने आकर गुरू जी के नौकर से कहा—"जा रे! मेरा जूता तो वहां से उठा ला।" वह नहीं गया। ब्राह्मण ने फिर कहा तब भी मोची नहीं गया और चुप बैठा रहा। जब ब्राह्मण ने कई बार कहा और मोची ने एक न सुनी, तब ब्राह्मण

झुंझलाकर बोला—"क्यों बे! ब्राह्मण का भी कहना तू नहीं मानता, तू कौन जाति का है?" यह सुन कर मोची कांपते कांपते गुरू की ओर देख कर बोला—"महाराज मेरी जाति तो पहिचान ली गई, अब मैं न रहूँगा, मुझे जाने दीजिये।" इतना कह कर वह वहां से रफू चक्कर हो गया। यहीं माया का भेद विदित होने पर विदित होता है।

[५२६] एक दिन एक अवधूत सन्यासी ने मठ के ऊपर से देखा कि एक बरात बड़ी धूमधाम से ढोल-ताशे बजाती हुई जा रही थी। बरात के पास ही एक शिकारी एक मन होकर किसी पक्षी की ओर निशाना लगा रहा था। उसका ध्यान पक्षी पर ऐसा लगा हुआ था कि उसने बरात जाती न जानी। यह देख अवधूत ने शिकारी को प्रणाम कर कहा कि स्वामी आप मेरे गुरू हैं। जब मैं अपना मन ईश्वर के ध्यान में लगाऊं तब वह आप की ही तरह हो।

[५३०] एक ब्राह्मण ने किसी राजा से जाकर कहा कि "महाराज! मुझ से श्रीमद्भागवत सुनिये।" राजा ने कहा—"आपने श्रीमद्भागवत का अर्थ अभी तक नहीं समझा है। जाकर पहिले अच्छी तरह पढ़िये तब आइये।" ब्राह्मण अप्रसन्न होकर चला गया और सोचने लगा कि "राजा अबूझ है। मैंने इतने दिन श्रीमद्भागवत पढ़ी तो भी वह कहता है कि फिर जाकर पढ़िये।" राजा की बात का उत्तर देना कठिन था। यह सोच घर में आकर श्रीमद्भागवत का पाठ करने लगा और उसका अर्थ विचार कर हँसता और यह कहता जाता था कि राजा कैसा निर्बोध है।

श्रीमद्भागवत में मुझे क्या कुछ समझना रह गया है?" आखिर एक दिन वह फिर राजा के पास जाकर बोला—"महाराज! अब मुझसे आप श्रीमद्भागवत सुनिये।" राजा ने फिर कहा—"आप भली-भांति श्रीमद्भागवत पढ़ कर आइये तब हम सुनेंगे।" ब्राह्मण ने राजा की बात का उत्तर न दिया, किन्तु मन में उदास होकर घर लौट आया और सोचने लगा—"राजा मुझे क्यों बारंबार कहता है? अवश्य ही इसमें कोई मर्म है।" उसने फिर श्रीमद्भागवत का पाठ करना आरम्भ किया और ज्यों ज्यों वह पाठ करने लगा, उसके हृदय में नये नये भाव उठने लगे और वह मस्त होकर आपही श्रीमद्भागवत का पाठ करता और रो रोकर व्याकुल होता रहता था। राजा के घर फिर कभी नहीं गया। बहुत दिन पीछे राजा ने सोचा कि वह ब्राह्मण फिर नहीं आया? तब राजा आप उसके घर गया और देखा कि ब्राह्मण अश्रुपूर्ण लोचन श्रीमद्भागवत पढ़ रहा है। राजा ने उसको देख कर कहा—"महाराज! अब आपका श्रीमद्भागवत का पढ़ना ठीक है।"

[५३१] तीन चार अन्धे हाथी देखने गये। उनमें से एक ने हाथी का पांव टटोला और कहा—"हाथी खम्भे के समान होता है।" दूसरे ने सूंड़ टटोला और कहा—"हाथी मूसर की तरह है।" तीसरे ने उसके पेट पर हाथ फेर कर कहा—"हाथी विटौरा की तरह होता है।" चौथे ने कान टटोल कर देखा और कहा—"हाथी सूप सा होता है।" इसके पीछे हाथी के रूप के विषय में उनमें झगड़ा हुआ। इस झगड़े को सुनकर एक मनुष्य ने उनसे कहा—

"तुम क्या बक रहे हो?" वे बोले—"आप पञ्च होकर हमारा झगड़ा मिटा दें।" निदान उसने सब की बात सुनकर कहा—"तुम में से एक ने भी ठीक तरह से हाथी को नहीं पहिचाना है। न हाथी खम्भे की तरह है, न मूसर सा होता है, न बिटौरा के ढङ्ग का होता है, न सूप के तुल्य है। हाथी का पाँव खम्भे की तरह, कान उसके सूप के समान और सूंड़ मूसर के तुल्य होता है तथा पीठ बिटौरा की तरह होती है।" ऐसे ही ईश्वर का ज्ञान जिन्हें थोड़ा होता है वे आपस में वादाविवाद करते हैं।

[५३२] एक बार महाराज बर्दवान की सभा में इस बात पर बड़ा विचार हुआ था कि शिव बड़े हैं या विष्णु। पण्डितों में से किसी ने कहा—"हर बड़े हैं"। किसी ने कहा—"हरि बड़े हैं।" दोनों में बड़ा झगड़ा हुआ। अन्त में एक बुद्धिमान् पण्डित बोला—"महाराज! न मेरा शिव से साक्षात्कार हुआ और न विष्णु से, फिर कौन बड़ा और कौन छोटा है कैसे कहा जाय?"

[५३३] किसी स्थान में एक शैव (शिवजी का भक्त) रहता था। उसकी भक्ति से भगवान् शिव ने उसको अपना दिव्य दर्शन देकर कहा—"देख, बेटे! मेरी भक्ति से तूने मेरा दर्शन पाया है, परन्तु जब तक कमलापति हरि से तेरा बैर भाव दूर न होगा, तब तक मैं तेरे ऊपर प्रसन्न नहीं होऊँगा।" शैव ने यह बात सुनकर सिर झुका लिया। भगवान् शिव भी वहां से चले गये। शैव फिर साधन करने लगा। शिव ने व्याकुल हो फिर उसे दर्शन दिया, किन्तु इस बार भगवान् शिव आधे हर और आधे हरि अर्थात्

'हरिशंकर' रूप से आए। शैव आधी हर मूर्त्ति से आधा प्रसन्न, आधी हरि मूर्त्ति से आधा अप्रसन्न हुआ। इसके बाद भी वह हर की ही पूजा करने लगा। पांव धोने में केवल शिवांश का पांव धोया, हरि अंश के पैर को देखा तक नहीं। भगवान् शूलपाणि ने कहा—"देख तेरी मनोकामना पूर्ण तो होगी, परन्तु विष्णु के द्वेष से बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। मैंने कृपा करके तुझे हरिहर मूर्त्ति दिखलाई थी। हर में और हरि में भेद नहीं है, इस बात को तुझे समझाने के लिये मैंने यत्न किया, पर तू न समझ सका।" शिव की यह बात सुन वह शैव एक गाँव में रहने लगा। धीरे धीरे गाँव के लोग उसको पहचान गये कि यह हरि का नाम सुनकर चिढ़ता है। तब उसको देखते ही गाँव के लड़कों ने 'हरि हरि' कह कर ताली बजाना शुरू किया। शैव ने मजबूर होकर अपने दोनों कानों में दो घण्टे लटका दिये। ज्योंही लड़के हरि हरि कह कर चिल्लाते, त्योंही वह अपने कानों के घण्टे बजाने लगता, जिससे उसको हरि नाम सुनाई न दे। तब शैव का नाम घण्टाकर्ण प्रसिद्ध हुआ। तात्पर्य यह कि अपने इष्टदेव की मूर्त्ति पर विशेष श्रद्धा और अनुराग रखना उचित है, पर दूसरी मूर्त्तियों का भी भजन-पूजन करना उचित है। जहां तक हो द्वेष को छोड़ देना चाहिये।

[५३४] कलकत्ते जाने के बहुत से रास्ते हैं। एक मनुष्य कलकत्ते जाने का मार्ग नहीं जानता था, उसने दूसरे से पूछा। वह इशारा करके बोला—"उस पंथ से जाओ।" थोड़ी दूर चलकर उसने तीसरे से पूछा और उसने दूसरा रास्ता बताया। इसी प्रकार

पूछने से बहुत पंथ उसे मालूम हो गये। वह एक में थोड़ा दूर चल कर फिर लौट कर दूसरे मार्ग से चलने लगता था। अन्त में फल यह हुआ कि वह केवल घूमता ही रहा और कलकत्ता न पहुँच सका। तुम ईश्वर के निकट जाना चाहो तो किसी एक गुरु के उपदेश पर विश्वास करके चलो, क्योंकि यदि ऐसा न करोगे तो बीच ही में भटक कर मरोगे।

[५३५] स्वप्न और जागती अवस्था के विषय में चर्चा करते करते परमहंस देव जी ने एक कहानी कही कि एक मनुष्य था जो किसी की नौकरी-चाकरी नहीं करता था, इसीलिये उसकी स्त्री उसे भला बुरा कहा करती थी। एक दिन उसका लड़का बीमार होकर मर गया और घर के सब लोग हायहाय कर रोने लगे। उसी समय वह मनुष्य कपड़े पहिन कर मकान से बाहर निकला। मकान के और लोग दुखी थे, इस कारण उसकी ओर किसी ने न देखा। समय बीतने पर लोगों का शोक जब कुछ घटा और वे उसको ढूंढ़ने लगे तो वह कहीं न मिला। वे बहुत व्याकुल हुए, बहुत देर पीछे देखा कि वह अचकन पहिने दफ़्तर से आ रहा है। उसकी स्त्री ने देखकर पूछा—"तुम कहाँ गये थे?" वह बोला कि "मैं नौकरी की तलाश में गया था।" स्त्री यह सुन कर बोली—"हाय! तुम कैसे मनुष्य हो? तुम्हारे हृदय में बिलकुल स्नेह नहीं है। लड़के को मरे बहुत दिन भी तो नहीं हुए हैं। तुम्हारे दिल में कुछ भी दुःख नहीं हुआ, जो तुम आज ही नौकरी की तलाश में गए?" वह हँस कर बोला—"सुनो! एक दिन मैंने स्वप्न देखा कि मेरे सात लड़के हुए।

मैं उनको लेकर बड़ा प्रसन्न हो रहा हूँ। इतने में मेरी नींद खुल गई तो वहां एक भी लड़का न पाया और मुझे उनके लिये कुछ भी दुख नहीं हुआ।"

[५३६] किसी मनुष्य को देने से पुण्य होता है और किसी को देने से पाप होता है। जैसे एक क़साई एक गाय को बध करने के लिए लिये जाता था और गाय भागने की चेष्टा करती थी। इसलिये कसाई को उसे ले जाने में बड़ी मेहनत करनी पड़ी। रास्ते में एक सराय थी। गाय को एक पेड़ से बांधकर कसाई ने सराय में भोजन किया। जब उसके शरीर में ज़ोर आया तब वह गाय को खींच ले गया। अन्त में उस गाय के बध का चार आने भर पाप कसाई को और बारह आने भर पाप अतिथि-शाला के स्वामी को मिला, क्योंकि खाना न मिलता तो कसाई उस दिन गाय को नहीं ले जा सकता था।

[५३७] रास्ते में चलते चलते रात हो जाने से एक मछली वाली किसी माली के घर में ठहरी। माली ने उसकी सेवा की पर उसे नींद न आई। अन्त में माली ने सोचा कि वाटिका के फूलों की सुगन्ध से उसे नींद नहीं आती। फौरन उसने मछली की थाली में पानी भर कर मछली वाली की खाट के आगे रख दिया तब मछली वाली को नींद आगई। विषयी जीव भी मछली वाली के समान हैं। संसार की बुरी वस्तु बिना उन्हें किसी और वस्तु से सुख नहीं मिलता।

[५३८] एक स्त्री-पुरुष वैराग्य लेकर तीर्थों में घूम रहे थे।

चलते चलते पति ने देखा कि मार्ग में हीरे पड़े हैं। उनको देख उसने सोचा कि इनको मिट्टी से छिपा देना चाहिये। नहीं तो यदि मेरी स्त्री देखेगी तो उसे लालच होगा। यह बात सोच कर वह हीरों पर मिट्टी डाल रहा था कि उसी समय उसकी स्त्री भी आ पहुँची और पति की करतूत देख पास आकर बोली—"तुम क्या कर रहे हो?" पति चुप हो गया। स्त्री ने पैर से मिट्टी को हटाकर कहा—"अभी हीरा और मिट्टी का भेद बना ही है? तब तुम क्यों बन में आए हो?"

[५३६] प्रश्न—आप स्त्री लेकर क्यों गृहस्थ नहीं बनते?

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा, एक दिन भगवान स्कन्द ने एक बिल्ली को नाख़ून से खरोंच दिया। दूसरे दिन माता के गले में नाख़ून का एक निशान देख कर उन्होंने पूछा—"माता आप के गले में खरोंच कैसा लगा है?" जगन्माता ने कहा—"बेटे! तुमने खरोंचा है।" तब कार्तिकेय ने पूछा—"हमारा नाख़ून तुम्हारे गले में कैसे लगा?" माता बोली—"बच्चा कल तुमने एक बिल्ली को नाख़ून से खरोंचा था क्या तुम भूल गये?" तब स्कन्द ने फिर पूछा—"बिल्ली का खरोंचा आपके गले में कैसे आ गया?" माता बोली —"बेटा! इस संसार में हम से एक भी जीव अलग नहीं, तुम चाहे किसी को मारो चोट हमारे लगेगी।" कार्त्तिकेय को आश्चर्य हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस जीवन में विवाह कभी न करूँगा, क्योंकि जिससे हम ब्याह करेंगे वह हमारी माता ही होगी। निदान सब पदार्थों में मातृभाव हो जाने से उनका विवाह

नहीं हुआ। ऐसे ही हमारी भी हालत है, हम भी सब स्त्रियों को माता के समान देखते हैं।

[५४०] जिसे मछली पकड़ने की आदत है, वह यदि सुने कि किसी तालाब में मछलियां हैं तो वह उस तालाब के मच्छी पकड़ने वालों के पास जाकर पूछेगा कि क्या इस तालाब में सचमुच बड़ी बड़ी मछली हैं? और यदि हैं तो किस चारे से फँसती हैं। ऐसे सब भेद लेकर वह बंसी फेंक धीरे धीरे जांच करेगा। जब मछली के चारा पकड़ने से चिप्पी हिलती देखेगा तो मछली को पकड़ सकेगा। इसी प्रकार धर्मराज्य में भी महापुरुषों की बात पर विश्वास लाकर, भक्ति रूप चारा डाल, मन रूप बंसी और प्राण रूप कांटा लगा कर धीरज धर कर बैठना चाहिये।

[५४१] कोई राजा ब्रह्महत्या का प्रायश्चित पूछने के लिये किसी ऋषि के पास गया। ऋषि उस समय नहाने गये थे। उनके लड़के ने कहा—"राम नाम तीन वार उच्चारण करो, ब्रह्महत्या मिट जायगी।" ऋषि ने आकर जब यह बात सुनी तो बोले—"ऐ चाण्डालो! एक बार राम नाम लेने से करोड़ों जन्म के पाप दूर हो जाते हैं, फिर तूने तीन बार राम नाम का उच्चारण करने को क्यों बतलाया? जा तू चाण्डाल हो जा।" उसी शाप से वह लडका गुह चाण्डाल हुआ। ऐसी कथा प्रसिद्ध है।

[५४२] प्रश्न—विषय लिप्तता कैसी होती है?

उत्तर—विषयी पुरुष घट-घरे नेउले की तरह होते हैं। जो लोग न्यौला पालते हैं वह भीत में एक घड़ा टाँग देते हैं और नेवले के गले में

रस्सी डालकर उसके दूसरे सिरे में ईंट बाँध कर घड़े में लटका देते हैं। न्यौला घड़े से बाहर निकल कर इधर-उधर घूमता है, किन्तु यदि उसे कोई डांटे या कुछ खटका हो तो वह दौड़ कर घड़े में जा घुसता है, पर बहुत देर वहां नहीं ठहर सकता है। गले की रस्सी से जो ईंट बंधी होती है, उसके सहारे वह फिर नीचे उतर आता है। विषय-लिप्त पुरुष भी ऐसे ही होते हैं। दुःख में पड़कर वे ऊँचे अर्थात् ईश्वर की ओर उचकते हैं। वहां बहुत देर न रह सकने के कारण सांसारिक विषय रूपी ईंट के सहारे फिर उतर आते हैं और विषय में लिप्त रह जाते हैं।

[५४३] बछड़ा 'हम्वा' का शब्द नहीं करता, किन्तु 'हम' 'हम' कहता है। इसी का परिणाम यह होता है कि मर जाने पर उसके चाम की ढोल और नाड़ी की तांत बनती है, जिससे रुई धुनी जाती है। धुनते समय तांत 'तू ही तू ही' करती है। अर्थात् जब अहंकार था तब 'हम हम' करता था, पर जब अहंकार नाश हो गया तब 'तू ही तूही' करता है।

[५४४] किसी जवान ने परमहंसदेव जी के पास आकर पूछा—"महाशय! धर्म की चर्चा चारों ओर सुनने में आती है, परन्तु यथार्थ में धर्म है क्या? आप मुझे बतला दीजिये।" परमहंसदेव जी ने कहा—"एक पोखरा है, उसके चार घाट हैं। एक मनुष्य एक घाट से पानी पीकर कहता है यह वाटर (water) है। दूसरा देसरे घाट से जल लेकर कहता है कि यह एकुआ (aqua) है। इसी प्रकार तीसरा और चौथा मनुष्य तीसरे और चौथे घाट से

पानी लाकर कहता है यह पानी है यह आब है। बस यही धर्म का स्वरूप पहचानने का उत्ताम उदाहरण है।" स्वामीजी की यह बात सुन कर उसने चाहा कि फिर प्रश्न करूँ, परन्तु परमहंसदेव जी ने कहा—"जाओ जाओ मालूम होता है तुम्हारा तर्क-वितर्क करने का विचार है।" वह युवा चुपचाप वहां से चला गया।

[५४५] शङ्कराचार्यजी का एक षण्डामार्क नामक शिष्य था। जब शङ्कर स्वामी कहते थे कि 'शिवोहम्' तो वह भी कहता था 'शिवोहम्।' अर्थात् शङ्कर स्वामी जो कुछ करते थे, वही वह भी करता था। उसमें यह एक बड़ा गुण था कि वह पूरा गुरुभक्त था, इसलिये बड़े यत्न से गुरू की सेवा करता था। गुरू के भोजन के पीछे जूँठी पत्तल में प्रसाद पाता था। इस शिष्य में दोष यह था कि वह अपने आपको शङ्कर स्वामी की तरह मुक्त पुरुष समझता था। शङ्कर स्वामी एक दिन ज्ञान देने के लिये उसको साथ लेकर लुहार की दुकान पर पहुँचे और जलते हुए लोहे का लाल छड़ देखते ही देखते चबा गये और उससे बोले—"ले मेरा प्रसाद खा।" शिष्य चकित हो गया कि जलते लोहे का छड़ कैसे खा सकता हूँ? वह उस काम को न कर सका। निदान उसी दिन से उसकी बुद्धि शुद्ध हो गई कि 'शिवोहम्' कहना सहज है पर शिव होना कठिन है।

[५४६] जैसे समुद्र की वायु से पेड़ इत्यादि सभी वस्तु गलने लगती हैं, वैसे ही ब्रह्म सागर की वायु से मनुष्य के दुर्गुण भी गल जाते हैं। अहन्ता और ममता की गाँठ खुल जाती है। उसी वायु से

सनक सनन्दन और सनत् कुमार द्रव हो गये। नारद जी दूर ही से ब्रह्म सागर देखकर अपने रूप तक को भूल गये और भगवान के कीर्तन में पागल होकर पृथ्वी पर घूमने लगे। शुकदेव जी तट पर पहुँच कर हाथ से तीन बार ब्रह्म सागर का आचमन करते ही ब्रह्म-भाव में लीन हो गये और पिशाचवत् इधर उधर चक्कर खाने लगे। जगद्गुरु शङ्करजी ब्रह्मसागर का सिर्फ तीन चुल्लू पानी पीकर मुर्दे के समान पड़ गये, तब उस समुद्र की थाह भला कौन लगा सकता है?

[५४७] सतयुग और त्रेता में जो योग और तपस्या की बातें लिखी हैं, उनके विषय में परमहंसजी कहा करते थे कि जैसे बाद-शाही समय का सिक्का अब नहीं चलता, वैसे ही इस समय के अव-तार के मत से ही चलना चाहिये।

[५४८] किसके भीतर क्या है, यह कौन जान सकता है? मनुष्य ऊपर से जिसको बुरा, जड़-बुद्धि और पागल जानते हैं, उनके भीतर सम्भव है कि साधु की आत्मा निवास करती हो। समाज से सम्मान मिलना साधुता का लक्षण नहीं कहा जा सकता।

[५४९] एक स्त्री ने जन्म ही से बड़े साधुभाव से अपना जीवन बिताया, परन्तु मरते समय जब लोग उसको गङ्गा जी में जलदाह करने को ले गये, तब गङ्गाजी की लहरों की कई बार उसकी कमर पर चोट लगी, जिससे उसके चित्त में कुछ कुभाव सा हुआ। बस इतने ही दोष से दूसरे जन्म में उसे वेश्या का शरीर धरना पड़ा।

[५५०] यदुनाथ मल्लिक का मकान कहाँ है? उनका बगीचा कैसा है? कितने रुपये की उनकी सम्पत्ति है? इत्यादि बातों का बहुत

लोग पता लगाया करते हैं, परन्तु ऐसे कम हैं जो यदुनाथ मल्लिक को देखने आते हैं या कष्ट उठाकर उनके पास आकर बात-चीत करते हैं। ऐसे ही शास्त्र विचार, धर्म-चर्चा बहुत से किया करते हैं, परन्तु ईश्वर का दर्शन चाहने वाले अथवा यत्न करके उनके निकट आने वाले मनुष्य बहुत ही कम होंगे।

[५५१] धान के बड़े बड़े ढेरों में लाई भरकर चूहादानी रख देते हैं। लाई की गंध सूंघकर चूहे चावल को छोड़ उसे खाने को दौड़ते हैं और अन्त में चूहादानी में फँसकर मारे जाते हैं। जीव की भी यही दशा है। ब्रह्मानन्दरूप सुख को छोड़कर विषय में जहाँ बहुत थोड़ा सुख है, जीव फँस जाता है और माया में मारा जाता है।

[५५२] एक मनुष्य ने घर छोड़ १४ वर्ष एकान्त में साधन करके कुछ सिद्धि प्राप्त की। तब उसने घर लौट कर अपने बड़े भाई से कहा—"ऐ भाई ! मैंने सिद्धि पाई है।" भाई ने पूछा—"कौन सी सिद्धि तुमने पाई है ?" उसने कहा—"मैं पैदल खड़ा होकर गङ्गा पार कर सकता हूँ।" बड़े भाई ने उलाहना देकर कहा—"चौदह वर्ष तपस्या करने के पीछे तुमने केवल यही सिद्धि पाई, जिसको मनुष्य एक धेले में प्राप्त कर सकता है। तुमने १४ वर्ष जो तपस्या में बिताये, उसके स्थान में थोड़े समय में धेला कमाने का कोई व्यापार क्यों नहीं सीखा ? गङ्गा पार हो जाते।"

[५५३] किसी समय हृदयनाथ मुखोपाध्याय ने परमहंस देव से कहा—"मामा सच्चिदानन्दमयी माता का दर्शन आप को होता ही है, उससे कोई सिद्धि माँग लो।" रामकृष्ण को हृदय बाबू ने

जैसा समझाया वे वैसा ही समझ गये और माता के निकट जाकर सिद्धि माँगी तथा माँगते माँगते उन्हें समाधि लग गई। तब उन्होंने देखा कि एक मनुष्य विष्टा दिखला कर कह रहा है 'इसका नाम सिद्धि है, लेना हो तो लो।' परमहंसदेव यह अचम्भा देख कर बोले 'नहीं माँ! नहीं' मैं आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक भी नहीं माँगता।"

[५५४] पतंग का स्वभाव है कि उँजियाला देखते ही उसमें गिरना चाहता है, चाहे उसमें गिरकर मारा ही जाय। उजियाले को कोई आवश्यकता नहीं कि पतंग उसमें गिरे। इसी प्रकार सच्चे भक्त ईश्वर में गिरते हैं चाहे कुछ भी हो, परन्तु ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं। जो उनके पास आता है वे उसे ही आत्मरूप कर लेते हैं।

[५५५] एक समय कोई मनुष्य जहाज पर चला जाता था। बीच में जहाज टूट गया तब वह तैर कर लङ्का में पहुँचा। राक्षस उसे पकड़ कर विभीषण के पास ले गये। विभीषण ने आरती उतार कर उसकी इसलिये पूजा की कि रामचन्द्रजी ने मनुष्य रूप में अवतार लिया था।

[५५६] सिवार (काई) के एक बार हटा देने पर वह फिर जल को छिपा लेती है। ऐसे ही माया को हटा देने पर भी वह फिर ढाँक लेती है। सिवार को हटाकर यदि चारों ओर बाँस का बेड़ा बाँध दिया जाय तो फिर वह नहीं फैलती। ऐसे ही माया को हटाकर ज्ञान और भक्ति का घेरा बनाया जाय तो फिर माया नहीं घेरती,

किन्तु ईश्वर का प्रकाश रहता है।

[५५७] परमहंस देव ने कहा—"कलियुग में हठयोग से सिद्धि होना कठिन है।" एक मनुष्य ने उनसे पूछा—"क्यों? हठयोग भी तो ईश्वर की प्राप्ति का एक उपाय है।" इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा—"अन्त में हठयोगी के तन के ऊपर मन आ जाता है। जैसा कर्त्ता भजा मत के अनुसार भजन करने वालों का मन पीछे रमण करने में लग जाता है।"

[५५८] जैसे रामलीला के स्वांग में कोई मनुष्य मारीच (माया का मृग) बनकर आता है, पर वह सचमुच मनुष्य होता है। वैसे ही यद्यपि सब लोग मनुष्य का चोला पहिने हुए हैं, पर वास्तव में उनमें से किसी का बाघ का सा, किसी का रीछ का सा और किसी का सर्प का सा स्वभाव होता है।

[५५९] परमहंस जी ने भक्तमाल ग्रन्थ के विषय में कहा है कि जो कोई भक्तमाल पढ़े वह कट्टरपना और अनुदारता त्याग कर पढ़े। परमहंस जी ने सब मतों को ईश्वर के पास पहुँचने का मार्ग माना था, उनके सामने जो कोई किसी मत की निन्दा करके अपने मत की तारीफ़ करता था उस पर परमहंस जी अप्रसन्न होते थे।

[५६०] प्रश्न—साधना की गति कैसी होती है?

उत्तर—साधना की चाल तीन प्रकार की होती है। एक चींटी की चाल, दूसरी बन्दर की चाल, तीसरी पक्षी की चाल। पक्षी की चाल जैसे पक्षी ने वृक्ष के पके फल में चोंच मारी कि फल गिरा और पक्षी उड़ गया तथा उसे फल नहीं मिला। बन्दर की चाल

जैसे बन्दर ने मुंह में फल लेकर ज्योंही छलाँग मारी कि फल गिर गया। चींटी की चाल जैसे चींटी धीरे धीरे अपने भोजन के पास गई और धीरे धीरे उसे खाने लगी। साधन भी चींटी के समान करना अच्छा होता है।

[५६१] एक ज्ञानी और एक भक्त दोनों साथ साथ बन में गये वहां उन्हें एक सिंह दिखाई पड़ा। ज्ञानी बोला—"हमें भागना न चाहिये, सर्वशक्तिमान परमेश्वर हमें बचावेगा।" भक्त बोला—"नहीं भाई! चलो, भाग चलें जो काम हम आप कर सकते हैं उसमें ईश्वर को फ़िजूल कष्ट क्यों दें!"

× × × ×

[५६२] छोटे छोटे बालक घर में अकेले मनमाने खिलौनों से खेलते हैं वहां उन्हें डर नहीं लगता, पर ज्योंही माता आती है त्योंही खिलौना फेंक कर अम्मा करके उसके पास दौड़ जाते हैं। तुम लोग भी ऐसे ही धन, मान, कीर्ति की पुतली से संसार में सुख भोगते हो कोई डर नहीं पाते, पर यदि एक एक बार भी आनन्द-मयी माता का दर्शन पालो तो तुम्हें धन, मान और कीर्ति अच्छी न लगेगी। सब छोड़कर तुम माता के पास दौड़ जाओगे।

[५६३] श्रीरंग देश में एक ब्राह्मण रहता था। वह बेपढ़ा था पर हर दिन गीता के अठारहों अध्याय का पाठ करता था और निरन्तर आनन्द के आँसू बहाया करता था। गीता के पदों का ठीक उच्चारण भी वह नहीं कर सकता था फिर अर्थ क्या समझता? सब लोग उसकी हंसी उड़ाते थे परन्तु वह एक भी नहीं सुनता

था। अपना पाठ प्रति दिन करके आनन्द के आँसू बहाता था। एक दिन श्री गौराङ्ग चैतन्यदेवजी ने उसके पास आकर पूछा—"बेटा ! गीता की कौन सी बात से तुम्हारे इतने आँसू बहते हैं ?" उसने कहा—"गुरू की आज्ञा से मैं नित्य गीता का पाठ करता हूँ और जब तक पाठ करता हूँ तब तक ध्यान से देखता हूँ कि श्रीकृष्णजी अर्जुन के रथ पर बैठकर उसको उपदेश दे रहे हैं।" श्री गौराङ्ग-देव जी ने उसको हृदय से लगाकर कहा—"तुम्हीं ने गीता का सार पाया है।"

[५६४] केशव बाबू एक दिन परमहंस जी को कमलकुटीर (अपने घर) लेजाकर धर्म-चर्चा के पीछे उनसे बोले—"क्या आपको कनक पर पूरी स्वतंत्रता है ?" परमहंसजी यह सुन कर लड़कों के समान सूधेपन से बोले—"नहीं महाशय ! मैं यह नहीं कह सकता।" उन्होंने यह बात ऐसे भाव से कही कि केशव बाबू की नस नस में घुस गई और केशव बाबू ने बड़ी प्रशंसा करके दूसरे लोगों से यह बात कही—"परमहंसजी की कैसी विलक्षण रुचि है कि धातु के छूने से उनका हाथ अपने आप टेढ़ा पड़ जाता है। अहो ! तब भी वह कहते हैं कि सोने पर मेरा ज़ोर नहीं है !"

[५६५] कृष्णलीला के नाटक में तुमने देखा होगा कि जब तक लोग गड़बड़ मचा कर कहते रहते हैं कि "कान्हा आओ !" और चिल्ला चिल्ला के गाते हैं, तब तक कृष्ण उनकी ओर देखते भी नहीं। वे नेपथ्य में वार्त्तालाप करते रहते हैं। अन्त में जब सब आडम्बर दूर हो जाता है और नारद मुनि प्रेम भरे मीठे स्वर से

गान आरम्भ करते हैं, तब श्रीकृष्ण नहीं ठहर सकते और तुरन्त रङ्गभूमि में आ जाते हैं। साधक की चित्त-वृत्ति का भी यही हाल होता है। जब तक साधक "प्रभू आओ" किया करते हैं, तब तक प्रभू उनकी ओर देखते भी नहीं। वह तब आते हैं जब साधक भक्ति-भाव से गद्गद होकर बात करता है।

[५९९] किसी समय नारदजी को अभिमान हुआ कि मेरे समान दूसरा कोई भक्त नहीं। भगवान् ने यह जानकर कहा—"हे नारद ! अमुक स्थान में मेरा एक भक्त रहता है, तुम उससे मिल आओ।" नारद जी वहां गये और देखा कि एक किसान सवेरे उठ कर एक बार हरि नाम कह कर खेत में हल जोतने गया और सारे दिन काम किया। रात को घर आकर फिर एक बार हरिनाम ले कर वह सो रहा। नारद जी ने कहा—"वाह ! इसको भगवान् जी भक्त कैसे कहते हैं ? भक्त के लक्षण तो इसमें कुछ भी नहीं देखता हूँ।" तब नारदजी ने भगवान् के पास जाकर अपना अनुभव कह सुनाया। भगवान् ने कहा—"नारद ! तुम यह तेल की कटोरी हाथ में लेकर स्वर्ग में घूम आओ, पर देखो एक बूँद भी तेल न गिरने पावे।" भगवान् की आज्ञा पाकर नारदजी तेल से भरी कटोरी लेकर स्वर्ग में घूम आए। तब भगवान् ने कहा—"नारद ! स्वर्ग घूमते समय मेरा नाम कितने बार लिया।" नारदजी ने कहा—"भगवान्, मैं आपका नाम एकबार भी न ले सका। स्मरण कैसे करूँ ! आपने तो कटोरी को तेल से किनारे तक भर दिया था। पाँव उठाते ही तेल छलकने लगता, इस डर से मेरी दृष्टि तेल की

ओर ही थी। आपके स्मरण में मेरा ध्यान कैसे जा सकता था?" भगवान् ने कहा—"नारद! एक कटोरी तेल के डर से तुम सरीखा भक्त मुझे भूल गया? विचारा वह तो किसान है, पर भक्त है जो इतने बड़े संसार के भार को सँभालता हुआ तो भी दिन-रात में दो बार मेरा नाम ले लेता है।

[५६७] एक नाई ने मार्ग में अचानक सुना कि कोई कहता था कि सात घड़े रुपये लोगे? नाई ने ताज्जुब से चारों ओर देखा पर कोई न दीख पड़ा। पर सात घड़े रुपये के लालच से चिल्ला चिल्ला कर बोला—"हम रुपये लेगें।" तब उसके कान में यह आवाज़ पड़ी—"मैं तेरे मकान पर रुपया रख आया हूँ तू जाकर ले ले।" यह सुनते ही नाई तुरन्त अपने घर गया और देखा कि वास्तव में उसके घर में सात घड़े रुपये रक्खे हैं, पर उनमें से छः घड़े भरे थे और एक घड़ा खाली था। तब उस खाली घड़े को भी उसने भरना चाहा। इसलिये उसने घर का सब सोना चांदी उस घड़े में भरा, पर उससे घड़ा नहीं भरा। अब नाई जो कुछ नित्य कमाता था वह भी उसी घड़े में डालता था। अन्त में गिड़गिड़ा कर राजा से बोला—"महाराज मुझे संसार में बड़ा दुःख है क्योंकि आपके तनख्वाह से मेरा पूरा नहीं पड़ता।" यह सुन राजा ने उसका महीना बढ़ा दिया, परन्तु तो भी नाई की वही दशा रही। तब वह नाई घर घर भीख मांग कर घड़ा भरने लगा। राजाने एक दिन उसकी यह दुर्दशा देखकर कहा—"क्यों रे नाई! पहिले तो थोड़े ही धन में भली भांति तेरी गुजर होती थी, पर अब दूने में भी नहीं

होती ? मैंने सुना है कि तू सात घड़ा रुपये लाया है ?" नाई घबड़ा कर बोला—"आपसे यह बात किसने कही ?" राजा ने कहा—"अरे ! वह धन यक्ष का है। पहिले वह मेरे पास आकर कहा करता था कि सात घड़े धन लोगे ? हमने पूछा कि खर्च करने को दोगे अथवा रखने को ? यह सुन यक्ष चुपचाप चला गया। ऐसा रुपया क्यों लेना चाहिये ? वह खर्च तो हो ही नहीं सकता ? यदि तू अपना भला चाहता है तो उस रुपये को फेर दे।" नाई यह सुनते ही झटपट रुपये के पास गया और बोला—"अपना रुपया ले जाओ हमें नहीं चाहिये।" यह सुन यक्ष बोला—"अच्छा।" नाई ने घर में जाकर देखा तो एक भी घड़ा न था। लाभ के बदले यह हानि हुई कि जो कुछ उसने सातवें घड़े में अपना धन रक्खा था वह भी चला गया। धर्म-धन भी इसी प्रकार का है, ज्ञान न रहने से अन्त में सब का सब नाश हो जाता है।

[५६८] एक सन्यासी से कोई ब्राह्मण मिला। संसार तथा धर्म के विषय में बहुत सी वार्त्ता होने पर सन्यासी ब्राह्मण से बोला—"देखो कोई किसी का नहीं है।" ब्राह्मण ने कहा—"जो मनुष्य माता, पिता और पत्नी के लिये दिन रात मेहनत किया करता है, वह कैसे समझ सकता है कि उसका कोई नहीं है ? हे गोसाईं ! हमारा माथा दुखने पर जो माता घबड़ाती है और हमारे क्लेश को मिटाने के लिये वह अपना प्राण न्यौछावर कर देती है वह क्या मेरी कोई नहीं है ?" सन्यासी ने कहा—"यदि इस दृष्टि से देखो तो भी तुम्हारी न होगी, तुम भूलते हो। यह मत कहो कि माता,

पिता, पत्नी या पुत्र तुम्हारी सहायता करेंगे। मेरी बात सच है या झूठ इसकी परीक्षा कर देखो। आज घर जाओ और बहाना करके चिल्लाने लगो, तब हम तुम्हें जगत का खेल दिखलावेंगे।" सन्यासी के कथनानुसार ब्राह्मण घर जाकर चिल्लाने लगा। उस समय अनेक वैद्य डाक्टर आये पर उसकी पीड़ा किसी प्रकार कम न हुई। माता बोली—"हाय मैं मारी गई!" इसी प्रकार उसकी स्त्री तथा पुत्रादि सब रोने लगे। उसी समय वह सन्यासी भी पहुँचा और बोला—"सचमुच इसकी बीमारी बड़ी कड़ी है। यदि कोई इसके लिये प्राण अपना न्यौछावर करे तो वह अब भी बच सकता है।" यह सुन सब के सब दंग हो गये। संन्यासी ने बूढ़ी माता को बुलाकर कहा—"इस बुढ़ापे में लड़के को खोकर तुम्हारा जीना मरने से भी गया बीता है। यदि तुम इसके बदले प्राण दे दो तो मैं इसके प्राण बचा दूं। तुम यदि माता होकर प्राण न दोगी तो और कौन देगा?" बुढ़िया रोकर बोली—"बाबाजी! इसके लिये जो आप कहेंगे सो करूंगी, आप जो प्राण के लिये कहते हैं तो ऐसे पुत्र के लिये प्राण क्या चीज़ है? पर सोचती हूँ कि इसके बच्चों की क्या दशा होगी? मेरा कर्म न फूटा होता तो यह मेरे पेट में कैसे आता? यदि मेरा प्राण चला जाय तो इन्हें कौन पालेगा?" यह बात सुनते ही स्त्री रो उठी और बोली हाय—"मां! हाय बाप!" तब संन्यासी स्त्री से बोला—"इसकी माँ इसके लिये प्राण नहीं देती है। क्या तू इसके बचाने के लिये अपना प्राण देगी?" स्त्री ने कहा—"मेरे भाग्य में जो बदा होगा सो होगा, पर आप मर कर अपने

माता-पिता को दुखी करने से क्या लाभ है?" इस प्रकार से सभों ने अपना अपना बहाना किया। तब संन्यासी ने रोगी से कहा— "देखते हो तुम्हारे लिये कोई प्राण नहीं देता है। अब जानो कि कोई किसी का नहीं है।" बस उसी समय ब्राह्मण गृहस्थी छोड़ कर संन्यासी के साथ चला गया।

* ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः हरि ॐ *

परिशिष्ठ

—o—

आत्मज्ञान

१—जिस प्रकार साँप केंचुल से अलग है, उसी तरह आत्मा भी शरीर से अलग है।

२—अपने हृदय की ओर इशारा करके भगवान् श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—"जिसके अन्तर में परमेश्वर का निवास रहता है उसको बाहर भी वह जान पड़ता है, पर जिसने अपने भीतर परमेश्वर को नहीं पाया, वह अपने से बाहर भी उसे नहीं जान सकता। जो ईश्वर को अपने आत्मारूपी मन्दिर में देखता है, उसको समस्त संसार रूपी मन्दिर में भी वह दिखाई देता है।"

३—जब तक ईश्वर बाहर और दूर जान पड़ता है तब तक अविद्या है। जो जीता है, चलता है और जिसका जीवन ईश्वर में है, उसके लिये ईश्वर का साक्षात्कार हो जाना ही सच्ची विद्या है।

४—विद्या और ब्रह्मानन्द का चिन्तन करो, तुमको भी परम आनन्द प्राप्त होगा। यह आनन्द अनादि और अचल है। इसे केवल अविद्या ने छिपा रक्खा है। विषयों से जितनी कम प्रीति होगी उतनी ही अधिक ईश्वर की ओर प्रीति बढ़ेगी।

ईश्वर

५—सगुण ईश्वर दिखाई देता है। जैसे हम किसी परम प्रिय मित्र से सामने बात करते हैं, उसी तरह हम सगुण ईश्वर को छू सकते हैं और उनसे वार्तालाप कर सकते हैं।

६—अद्वैतवादियों को यह नहीं कहना चाहिये कि "हमारा ही मत सत्य और सीधा है। जो अवतार को मानते हैं वह ठीक मार्ग पर नहीं हैं।" ईश्वर का अवतार कम सत्य नहीं है। वह शरीर मन अथवा संसार से कहीं अधिक सत्य है।

७—यदि तू ईश्वर को ढूँढ़ता है तो उसे मनुष्य में ढूंढ़ और वस्तुओं से अधिक उसकी प्रभुता मनुष्यों में है। ऐसे पुरुष को खोज जिसका हृदय ईश्वर-प्रेम में उमड़ता है और जो ईश्वर-प्रेम में रम रहा है। ऐसे पुरुष में ईश्वर की झलक दिखाई देती है।

८—प्रश्न—एक सच्चा भक्त किस प्रकार ईश्वर को समझता है?

उत्तर—वह ईश्वर को अपना अत्यन्त समीपी, अत्यन्त प्रिय-कुटुम्बी समझता है। ऐसे ही जैसे वृन्दावन की गोपियों ने श्रीकृष्ण को जगन्नाथ नहीं, परन्तु अपना प्यारा गोपीनाथ समझा था।

९—प्रथम ईश्वर को अपने हृदय रूपी मन्दिर में प्रतिष्ठित करना चाहिये। पहिले साक्षात्कार करो फिर वक्तृता देना। अक्सर मनुष्य संसारी पदार्थों में फंसे रहते हैं फिर भी ईश्वर के बारे में मन गढ़न्त दूसरे से सुनी हुई बातें कहा करते हैं। इससे क्या होगा? यह तो उसी प्रकार है जैसे ईश्वर तो मन्दिर में है नहीं, पर शंख बजाते हैं।

१०—कोई ईश्वर-प्रेम में डूबने की इच्छा या धीरज नहीं रखता। कोई विवेक, वैराग्य या साधना करना नहीं चाहता, परन्तु सब थोड़ी सी पुस्तकों की विद्या को लेकर दूसरों को उपदेश देते फिरते हैं। उपदेश देना सब कामों से कठिन काम है। केवल वही रास्ता बता सकता है जो ईश्वर को प्राप्त करने के बाद उसकी अनुमति से उपदेश देता है।

११—बहुत लोग कहते हैं कि ईश्वर का ज्ञान बिना पुस्तकों के पढ़े नहीं प्राप्त हो सकता, परन्तु पुस्तकों के पढ़ने की अपेक्षा धर्म की बातों का सुनना अच्छा है। साक्षात्कार तो सब से अच्छा है। किसी सत्य बात की गुरु के मुख से सुनने में पुस्तकों के पढ़ने से अधिक दृढ़ता होती है, परन्तु साक्षात्कार सब से अधिक दृढ़ होता है। काशी के विषय में पुस्तकों में पढ़ने से अधिक अच्छा है काशी का वृत्तान्त सुनना और उसके मुँह से सुनना जिसने काशी देखी है, परन्तु सब से अच्छा तो काशी को स्वयं देखना है।

१२—हाँ, मैं तुमसे कहता हूँ कि जो ईश्वर को चाहता है वह उसे पा लेता है। तुम स्वयं अपने जीवन में इसको देख सकते हो। तीन दिन सच्ची श्रद्धा से परिश्रम करो अवश्य कामयाब होगे।

१३—जिसकी इच्छा अत्यन्त तीव्र है तथा जिसका मन स्थिर है, वह ईश्वर को बहुत शीघ्र प्राप्त करता है।

१४—तुम स्वयं अपने भावों के छलिया न बनो। निष्कपट भाव से रहो और अपने भावों के अनुसार कार्य्य करो, तुम अवश्य फलीभूत होगे। श्रद्धा और सरल हृदय से प्रार्थना करो, तुम्हारी प्रार्थना

स्वीकार होगी ।

१५—जो मनुष्य भरे हुये गहरे कुँए के पास खड़ा होकर सावधान रहता है कि कहीं उसमें गिर न जायें, वह धोखा नहीं खाता। इसी प्रकार संसार में संसारी माया से सावधान रहना चाहिये। क्योंकि जो एक बार इस संसार-कूप में गिर गया उसका साफ़ निकलना नहीं हो सकता।

१६—मन को स्थिर करने का सब से सीधा मार्ग यह है कि मोमबत्ती की लौ में अपने मन को लगावे। सबसे भीतर का नीला रंग शरीर समझो। उसमें मन को लगाने से शीघ्र ही स्थिरता प्राप्त होती है। नीले रंग के बाहर जो चमक देख पड़ती है वह सूक्ष्म शरीर है और उसके बाहर स्थूल समझो।

१७—जिस प्रकार घर के रहने वालों के जागते रहने पर घर में चोर नहीं घुस सकता, उसी प्रकार यदि तुम स्वयं अपनी रक्षा पर तत्पर रहो, तो कोई बुरी भावना से तुम्हारे मन की भलाइयों को लूट नहीं सकता।

१८—प्रश्न—क्या सचमुच प्रार्थना में सार्थकता है?

उत्तर—हाँ, जब मन, वचन दोनों एक साथ प्रार्थना करते हैं तो वह सुनी जाती है। उस मनुष्य की प्रार्थना निरर्थक है, जो मुँह से तो कहता है कि "यह सब पदार्थ हे भगवन्! आपका है", परन्तु हृदय में यह समझता है कि "यह सब मेरा है।"

१९—एक समय किसी ने यह प्रश्न किया कि अपने बैरी काम, क्रोध और ३० दुर्वृत्तियों पर मनुष्य कब विजय पा सकता है? भगवान्

ने उत्तर दिया कि मनुष्य जब तक अपने चित्त की वृत्तियों सांसारिक पदार्थों की ओर लगावेगा, तब तक ये वृत्तियाँ उस प्रति शत्रुता रक्खेंगी। परन्तु जब वे ईश्वर की ओर लगाई जायँगी, तब वे उसके साथ सच्चे मित्र का व्यवहार करेंगी।

२०—अपने चित्त को चिन्ता तथा अन्य सांसारिक वासनाओं से चंचल मत होने दो। प्रत्येक उचित कार्य्य को उचित समय पर करो। अपने मन को ईश्वर की ओर लगावो।

२१—जो तुम्हारे हृदय में हो वही अपनी ज़बान से कहो। तुम्हारे हार्दिक भावों और मौखिक शब्दों में एकता होनी चाहिए। अन्यथा यदि तुम हृदय से संसार ही को सब कुछ समझा करो और केवल मुख से यह कहा करो कि ईश्वर मेरा सर्वस्व है, तो तुम्हें इससे कुछ भी लाभ न होगा।

२२—आत्मा की शुद्धि के लिये चार अवस्थाएँ हैं :—

(१) साधुसंग अर्थात् साधुजनों के साथ रहना।

(२) श्रद्धा अर्थात् पारमार्थिक वस्तुओं की ओर प्रेम रखना।

(३) निष्ठा अर्थात् एकाग्र चित्त होकर अपने लक्ष्य का चिन्तन करना।

(४) भाव अर्थात् ईश्वर के ध्यान में डूबकर निस्तब्ध हो जाना।

श्री हरिः